जीव विचार विवेचन

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय
रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

'जीव-विचार'-विवेचन

(मूल ग्रन्थकर्ता : वादिवेताल श्रीमद् शान्तिसूरिजी)

❖ विवेचनकार ❖

व्याख्यान वाचस्पति, महाराष्ट्र देशोद्धारक पूज्यपाद
आचार्यदेव *श्रीमद् विजय* ***रामचंद्रसूरीश्वरजी*** *म.सा.* के
तेजस्वी शिष्यरत्न, बीसवीं सदी के महान् योगी,
नवकार-विशेषज्ञ, प्रशांतमूर्ति पूज्यपाद पंन्यासप्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य के चरम शिष्यरत्न
मरुधररत्न, जैन हिन्दी-साहित्य दिवाकर परम पूज्य आचार्यदेव
श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी म.**

123

-: प्रकाशक :-

दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor,
बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट,
कालबादेवी, मुंबई-400 002.
Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

आवृत्ति : पंचम • **मूल्य :** 100/- रुपये • **प्रतियां :** 3000
विमोचन स्थल : रोहा, महाराष्ट्र
विमोचन तारीख : दि. 04-04-2022, सोमवार

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 3000/- रु.

- आप जैन धर्म के रहस्य-जैन इतिहास-जैन तत्त्वज्ञान-जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हों तो आज ही आप दिव्य संदेश प्रकाशन मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य**श्री एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य ***आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.*** सा. द्वारा लिखित उपलब्ध 10 पुस्तकें दी जाएगी और **अर्हद् दिव्य संदेश** मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें (Open Book Exam साधु–साध्वी उपयोगी पुस्तके एवं पुनः मुद्रित पुस्तकों को छोडकर) घर बैठे प्राप्त होंगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. चेतन हसमुखलालजी मेहता
भायंदर (M.S.)
M. 9867058940

2. प्रवीण गुरुजी
C/o. श्री आत्म कमल लब्धिसूरि जैन पुस्तकालय
श्री आदिनाथ जैन टेंपल,
चिकपेठ, बेंगलोर-560 053.
M. 9036810930

3. राहुल वैद
C/o. अरिहंत मेटल कं.,
4403, लोटन जाट गली,
पहाड़ी धीरज, सदर बाजार,
दिल्ली-110 006.
M. 9810353108

4. चंदन एजेन्सी
607, चीरा बाजार,
मुंबई-400 002.

आजीवन सदस्यता शुल्क
Rs. 3000/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन
C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

(2) दिव्य संदेश प्रचारक
प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमट रोड, शंकरपुरा, बैंगलोर-560 004. Tel. (O.) 4124 7478 M. 8971230600

प्रकाशक की कलम से

गोडवाड के गौरव एवं मरुभूमि के रत्न परम पूज्य आचार्यदेव
श्रीमद् विजय श्री रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. का

संक्षिप्त परिचय

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय श्री रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. गोडवाड के गौरव, मरुभूमि के रत्न, बाली संघ की शान, चोपडा कुल के भूषण तथा पिता श्रीमान् छगनराजजी एवं माताजी श्रीमती चंपाबाई के कुल दीपक है। इनका सांसारिक नाम राजमल चोपडा था, परन्तु उन्हें **'राजु'** के लाडिले नाम से पुकारा जाता था। आज भी वे गोडवाड की जनता के लिए **'राजु महाराज'** के नाम से प्रख्यात है। पूज्य श्री का जन्म भादो सुदी 3 दिनांक 16-9-1958 के शुभ दिन हुआ था।

इनकी प्रारंभिक शिक्षा हायर सेंकडरी तक बाली में तथा 1st Year, B.Com. का शिक्षण S.P.U. College फालना में हुआ था। राजु को धार्मिक शिक्षण व संस्कार मिले श्रीमान् आनंदराजजी गेमावत से। बचपन से ही सूक्ष्म व तीक्ष्ण प्रज्ञा के कारण व्यावहारिक शिक्षण में उनका हमेशा प्रथम स्थान रहा। ई. सन् 1975 में राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय-बाली में 600 विद्यार्थियों के बीच राजु को **'सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी'** का पारितोषिक मिला था। जिला-स्तरीय निबंध-वक्तृत्व आदि स्पर्धाओं में भी विशेष स्थान प्राप्त किया था। इसके साथ ही धार्मिक पाठशाला में भी हमेशा प्रथम स्थान रहा। तत्वज्ञान विद्यापीठ-पूना की प्रारंभिक परीक्षा में भारत भर में पहला स्थान प्राप्त किया था।

बचपन में राजु के दिल में महत्वाकांक्षा थी **'आगे चलकर C.A. करना, उद्योगपति या राजनेता बनना।'** परंतु अपने ही पडौसी, पूर्णतया स्वस्थ भीकमचंदजी बद्दाजी परमार की अकाल मृत्यु तथा नदी के पानी में डूबने में हुई दो बाल मित्रों की करुण मौत के दृश्य को देखकर राजु को आयुष्य की क्षण भंगुरता के प्रत्यक्ष दर्शन हुए और उसके मन में वैराग्य भाव का बीजारोपण हुआ।

अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेवश्री के वचनामृत, सत्संग एवं उनके द्वारा प्रदत्त **'शांतसुधारस'** की अनित्य एवं अशरण भावना के गुजराती विवेचन के स्वाध्याय तथा **'धर्मदेशना'** पुस्तक में वर्णित चार गतियों के भयंकर दुःखों का वर्णन पढने से राजु की वैराग्य भावना और दृढ बनती गई।

एक वर्ष के कॉलेज शिक्षण दरम्यान भी राजु की वैराग्य भावना लेश भी खंडित नहीं हुई, बल्कि कॉलेज के साथ पूज्य गुरुदेव श्री के समागम से उसकी वैराग्य भावना तीव्र होती गई ।

वि.सं. 2030 में बाली में मुमुक्षु कमलाबहन की भागवती दीक्षा विधि का महोत्सव चल रहा था । रात्रि में संघ की ओर से आयोजित मुमुक्षु के बहुमान समारोह में राजु भी उपस्थित था । मुमुक्षु के वैराग्यपूर्ण संवाद आदि को सुनकर राजु के मन में तीव्र वैराग्य भाव पैदा हुआ ।

राजु ने अपने दिल की बात **पू.मु. श्री प्रद्योतनविजयजी म. क**ो कही । पूज्य मुनिराज श्री ने राजु की भावना को प्रोत्साहित किया और इस संदर्भ में विशेष मार्गदर्शन हेतु राजु को घाणेराव में विराजमान अध्यात्मयोगी निःस्पृह **शिरोमणि पूज्यपाद पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी म.सा.** के पास भेजा ।

अध्यात्मयोगी महापुरुष के दर्शन-वंदन कर राजु का हृदय खुशी से भर गया । मानव जीवन को सफल बनाने एवं संयम की निर्मल साधना हेतु पूज्य पंन्यासजी म.सा. ने राजु को सुंदर मार्गदर्शन दिया ।

धार्मिक पाठशाला में राजु ने पंच प्रतिक्रमण आदि का अभ्यास तो किया ही था, इसके साथ **प.पू. विद्वद्वर्य मु. श्री जितेन्द्रविजयजी म.सा.** एवं **प.पू. विद्वद्वर्य मु. श्री गुणरत्नविजयजी म.सा.** की तारक निश्रा में आयोजित **'ग्रीष्म कालीन आध्यात्मिक ज्ञान शिविर** में दो बार भाग लेकर जैन दर्शन के तत्त्वज्ञान, आवश्यक क्रिया के सूत्र रहस्य, जैन इतिहास, जैन भूगोल, कर्मवाद आदि का ज्ञान प्राप्त किया । इसके फलस्वरूप राजु की वैराग्य भावना और दृढ बनी ।

यद्यपि दीक्षा के लिए घर में अनुकूल वातावरण नहीं था, फिर भी दृढ मनोबल फलस्वरूप आखिर राजु के माता-पिता ने पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में रहने के लिए अपनी सम्मति प्रदान की ।

वि.सं. 2031 व 2032 में पूज्य गुरुदेवश्री के बेडा एवं लुणावा चातुर्मास में साथ में रहकर ज्ञानाभ्यास किया और संयम जीवन की ट्रेनिंग ली । डेढ वर्ष के अपने मुमुक्षु पर्याय में राजु ने उपधान तप, वर्धमान तप का पाया एवं 12 ओली, 20 दिवसीय एक लाख नवकार जाप साधना, पैदल-विहार के साथ साथ चार प्रकरण, तीन भाष्य, छ कर्मग्रंथ, तत्त्वार्थ, वीतराग स्तोत्र, योग शास्त्र, पंच सूत्र, संस्कृत की दो बुक आदि का भी सुंदर अभ्यास किया ।

राजु के दिल में उत्कट वैराग्य था तो दूसरी ओर माता-पिता के अन्तर्मन में रहे मोह के बंध को तुडवाना सरल काम नहीं था । मोह के बंधन को तोडने में राजु के सफल मार्गदर्शक बने थे अध्यात्मयोगी **पूज्यपाद**

पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य । उनका मार्गदर्शन और आशीर्वाद न होता तो शायद राजु को सफलता नहीं मिल पाती ।

दि. 7 जनवरी 1977 के शुभ दिन मुमुक्षु राजु अपने पिताजी **शा छगनराजजी चोपडा** और पंडितजी हिम्मतभाई (जो बाली में साधु-साध्वीजी को संस्कृत-प्राकृत और न्याय सिखाते थे ।) के साथ बाली से बस द्वारा लुणावा आए । उस समय अध्यात्मयोगी **पूज्य पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी म.सा.** लुणावा में विराजमान थे ।

वंदनविधि और औपचारिक बातचीत के बाद मुमुक्षु राजु के पिताजी का एक ही सूर था-राजु की दीक्षा 1-2 वर्ष बाद की जाय । उस समय भविष्यदृष्टा पूज्यश्री ने अपना मौन तोडते हुए एक ही बात कहीं... **'राजु अब तैयार हो चूका हैं, अब ज्यादा देर करने जैसी नहीं हैं ।'**

महापुरुष के थोडे से शब्दों में भी अपूर्व शक्ति होती है । वे बोलते कम है और काम ज्यादा होता है । बस, अध्यात्मयोगी युगमहर्षि महापुरुष के अल्प शब्दों ने छगनराजजी के मन पर जादुई असर किया और उन्होंने परिवार के अन्य किसी भी सदस्य से बातचीत किए बिना तत्काल ही पूज्यश्री को अपने सुपुत्र की भागवती-दीक्षा के लिए सम्मति प्रदान कर दी ! **यह था पुण्यपुरुष के अल्पशब्दों का गजब का प्रभाव !** और उसी समय पूज्य गुरुदेव श्री ने दीक्षा का मुहुर्त प्रदान किया । माघ शुक्ला त्रयोदशी 2033 के शुभ दिन मुमुक्षु राजु की भागवती दीक्षा निश्चित हो गई ।

पूज्य गुरुदेवश्री की ही असीम कृपा से जन्मभूमि बाली में **वर्धमान तपोनिधि पू. पंन्यासप्रवर श्री हर्षविजयजी म.** के वरदहस्तों से मुमुक्षु ने भागवती दीक्षा अंगीकार की । वे अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेव श्री के अंतिम शिष्य बने और वे **मुनि श्री रत्नसेनविजयजी म.** के नाम से पहिचाने जाने लगे । दीक्षा अंगीकार करने के बाद परम तपस्वी **पू.पं. श्री हर्षविजयजी म.सा.** के सानिध्य में लगभग 3 वर्ष तक पाटण में ग्रहण व आसेवन शिक्षा अंगीकार की । संस्कृत-प्राकृत व्याकरण के साथ न्याय, काव्य, प्रकरण ग्रंथ, कर्मग्रंथ, विविध दर्शन, जैन-आगम आदि का गहन अभ्यास किया ।

प्रभावक प्रवचन शैली : विक्रम संवत् 2033 में उनकी भागवती दीक्षा हुई ठीक 14 मास के बाद वर्धमान तपोनिधि **पूज्य पंन्यासप्रवर श्री हर्षविजयजी म.सा.** की शुभ निश्रा में वि.सं. 2034 फाल्गुण शुक्ला चतुर्दशी के दिन पाटण में उनका सबसे पहला प्रवचन हुआ । पूज्य गुरुदेवश्री के शुभाशीष उनके साथ थे, अतः वह प्रवचन अत्यंत ही प्रभावक रहा । उसके बाद वि.सं. 2036 से उनकी पर्युषण प्रवचनमाला एवं वि.सं. 2038 में बाली से उनके चातुर्मासिक प्रवचन प्रारंभ हो गए थे । वह प्रवचन गंगा आज भी निरंतर बह रही है ।

श्रोताओं की अंतरंग योग्यता को परखकर, शास्त्रीय पदार्थ को खूब सरल व रोचक शैली में समझाने की कला उन्हे हासिल हुई है । इसके द्वारा वे अनेकों के जीवन परिवर्तन में निमित्त बने है ।

प्रभावक साहित्य सर्जन : वि.सं. 2038 में पूज्य मुनिश्री ने अपने स्वर्गस्थ गुरुदेव श्री के जीवन परिचय के रुप में **'वात्सल्य के महासागर'** पुस्तक का आलेखन किया था, तब से उनकी लेखन यात्रा निरंतर जारी है । उनकी लेखनी में सरलता हैं, रोचकता है और धारा प्रवाह है । उनके द्वारा आलेखित साहित्य पाठकों के अन्तर्मन को इस प्रकार छू लेता हैं कि एक बार पुस्तक प्रारंभ करने के बाद उसे छोडने का मन ही नहीं होता है । साहित्य के विविध विषयों पर उनकी लेखनी चली है, जो आज भी गतिमान है ।

परम पूज्य उपकारी गुरुदेवश्री के कालधर्म के बाद पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य भगवंत, एवं समतानिधि पू. पंन्यास श्री वज्रसेनविजयजी म.सा. की आज्ञानुसार पाली, रतलाम, अहमदाबाद, पिंडवाडा, उदयपूर, जामनगर, गिरधरनगर, सुरेन्द्रनगर, थाणा, कल्याण, दादर, सायन, धुलिया, कराड, चिंचवड स्टे., भायंदर, पूना, येरवडा, कालाचौकी (मुंबई) श्रीपालनगर मुंबई तथा कर्जत (जिला रायगढ़ M.S.) भिवंडी, रोहा, भायंदर, पालीताणा, बाली, घाणेराव, पालीताणा, नासिक, बेंगलोर तथा मैसूर चैन्नइ, विजयपुर आदि क्षेत्रों में चातुर्मास कर दैनिक व जाहिर प्रवचनों के माध्यम से अनेकविध आराधनाएँ कराई है । पूज्यश्री की प्रेरणा से थाणा में 109 सिद्धितप व 160 सामुदायिक वर्षीतप की आराधनाएँ हुई थी ।

अपनी प्रवचन कुशलता के साथ साथ मात्र 24 वर्ष की उम्र में **'वात्सल्य के महासागर'** से प्रारंभ हुई उनकी लेखनी अबाधगति से आगे बढ़ रही है । पूज्य आचार्य म.सा. की अभी तक 226 पुस्तकें प्रकाशित हो चूकी है और अभी भी वह सर्जन यात्रा चालू ही है ।

तप साधना में पूज्यश्री अपने 46 वर्ष के संयम पर्याय में लगभग नियमित एकाशना करते हैं और प्रत्येक सुद पंचमी को ज्ञान की आराधना निमित्त उपवास करते है ।

पिंडवाडा, गिरधरनगर, थाणा, कल्याण, दादर, सायन, धूलिया, कराड, भायंदर, चिंचवड स्टे. पूना, येरवडा, श्रीपालनगर तथा भिवंडी में वाचना-श्रेणी का आयोजन कर सैंकडों नवयुवकों के जीवन को संस्कारित किया है ।

'अर्हद् दिव्य संदेश' मासिक के माध्यम से पूज्य आचार्यश्री के चिंतानात्मक लेख-प्रवचन-उपदेश पिछले 35 वर्षों से नियमित प्रकाशित हो रहे हैं ।

अनेकों को धर्मबोध देने वाले **पूज्य मुनिश्री रत्नसेनविजयजी म.सा.** को शासन प्रभावक प्रशांतमूर्ति पूज्यपाद **गच्छाधिपति आचार्यदेव श्रीमद् विजय**

महोदयसूरीश्वरजी म.सा. की आज्ञानुसार वैशाख वदी 6, वि.सं. 2055 में चिंचवड गांव (पूना) में गणि पद से और शासन प्रभावक पूज्य **गच्छाधिपति आचार्यदेव श्रीमद् विजय हेमभूषणसूरीश्वरजी म.सा.** की आज्ञानुसार कार्तिक वदी 5 वि.सं. 2061 के शुभ दिन श्रीपालनगर मुंबई में पंन्यास पद से अलंकृत किया गया था ।

अत्यंत ही सरल, रोचक व प्रभावपूर्ण प्रवचनशैली के द्वारा वे श्रोताओं के अन्तर्मन को छू लेते है । उनके उपदेश से अनेक भूले भटके युवानों को नई दिशा प्राप्त हुई है । वाचनाश्रेणी आदि के माध्यम से उन्होंने तरुण पीढी के जीवन को सुसंस्कारों से सुवासित किया है ।

वे कुशल विवेचनकार भी है : सामायिक सूत्र, चैत्यवंदन सूत्र, आलोचना सूत्र, श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र, आनंदघन चोबीसी, आनंदघनजी के पद, पू. यशोविजयजी म. की चोबीसी, अमृतवेल की सज्झाय आदि के ऊपर उन्होंने खूब सुंदर व सरलशैली में विवेचन भी किया हैं ।

वे कुशल अवतरणकार भी है : जैन रामायण और महाभारत पर दिए गए उनके, जाहिर प्रवचनों का उन्होंने स्वयं ने आलेखन भी किया है तथा अपने गुरुदेव एवं प्रगुरुदेव के प्रवचनों का सुंदर शैली में अवतरण भी किया है ।

वे कुशल भावानुवादक हैं : शांत सुधारस, श्राद्धविधि, गुणस्थानक क्रमारोह, पंच प्रतिक्रमण, चार प्रकरण, तीन भाष्य, छ कर्मग्रंथ आदि प्राचीन ग्रंथों का उन्होंने सरस भावानुवाद एवं विवेचन भी किया है ।

वे प्रभावक कथा-आलेखक भी हैं : कर्मन् की गत न्यारी (महाबल-मलयासुंदरी चारित्र) आग और पानी (समरादित्य चरित्र) कर्म को नहीं शर्म (भीमसेन चरित्र) तब आंसु भी मोती बन जाते है (सागरदत्त चरित्र) कर्म नचाए नाच (तरंगवती चरित्र) जैसे अनेक चरित्र ग्रंथों का धारावाहिक कहानी एवं उपन्यास शैली में आलेखन भी किया है ।

वे प्रसिद्ध चिंतक भी है : प्रवचन मोती, प्रवचन रत्न, चिंतन मोती, प्रवचन के बिखरे फूल, अमृत की बुंदे, युवा चेतना जैसे प्रकाशनों में उनके हृदय स्पर्शी चिंतन भी प्रस्तुत हुए है ।

वे कुशल प्रवचनकार भी हैं : श्रावक का गुण सौंदर्य, श्रावक कर्तव्य, श्रावकाचार प्रवचन, जैन पर्व प्रवचन, अष्टाह्निक-प्रवचन, कल्प सूत्र के प्रवचन, नवपद प्रवचन, प्रवचन-धारा, आनंद की शोध में उनके प्रवचनों का सुंदर संकलन है ।

वे प्रसिद्ध कहानीकार भी हैं : प्रिय कहानियाँ, मनोहर कहानियाँ, ऐतिहासिक कहानियाँ, मधुर-कहानियाँ, प्रेरक कहानियाँ सरस कहानियाँ आदि में उन्होंने अत्यंत ही सुंदर हृदयस्पर्शी कहानियों का आलेखन किया है ।

जैन शासन के ज्योतिर्धर, महान् ज्योतिर्धर, तेजस्वी सितारें, गौतमस्वामी-जंबुस्वामी, चौबीस-तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, महावीर प्रभु की पट्टधर परंपरा भाग 1, 2, 3 व 4 आदि में उन्होंने जैन शासन के महान् प्रभावक पुरुषों के जीवन चरित्रों का सुंदर आलेखन भी किया है ।

वे कुशल संपादक भी है : युवाचेतना विशेषांक, जीवन निर्माण विशेषांक, आहार विज्ञान विशेषांक, श्रावकाचार विशेषांक, श्रमणाचार विशेषांक, सन्नारी विशेषांक, राजस्थान तीर्थ विशेषांक, दीक्षा विशेषांक जैसे अनेक विशेषांकों का सफल संपादन भी किया है ।

उनके उपदेश से अनेक संघों में अनेकविध तपश्चर्याएं, अनेकविध भाव-यात्राएँ, तप-जप आदि अनुष्ठान, उपधान, प्रतिष्ठा, छ'री पालित संघ, उद्यापन, जीवित महोत्सव आदि संपन्न हुए है । उनके द्वारा आलेखित साहित्य भारत भर के हिन्दी भाषी क्षेत्रों में खूब चाव से पढा जाता है । सन्मार्ग की राह बतानेवाला उनका साहित्य अनेकों के लिए सफल मार्गदर्शक बना है । उनका साहित्य नूतन प्रवचनकारों के लिए भी खूब उपयोगी बना है ।

समुदाय के ज्येष्ठ पूज्यों के निर्णयानुसार एवं निःस्पृह शिरोमणि विद्वद्वर्य **पू.पंन्यासप्रवर श्री वज्रसेनविजयजी गणिवर्य श्री** की आज्ञा एवं आशीर्वाद से कोंकण शत्रुंजय थाणा तीर्थ में पोष वद-1, वि.सं. 2067, दि. 20-1-2011, गुरुवार के शुभदिन गुरु पुष्यामृतसिद्धियोग में आठ दिन के ऐतिहासिक महामहोत्सव के साथ शासन प्रभावक **पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय कनकशेखरसूरीश्वरजी म.सा.** के वरद हस्तों से **प.पू. मरुधररत्न गोडवाड के गौरव पूज्य पंन्यास प्रवर श्री रत्नसेनविजयजी म.सा.** को **'गुरु गौतम नगरी** (शिवाजी मैदान) में हजारों की जनमेदिनी के बीच **आचार्य पद** पर प्रतिष्ठित किया गया, तब से वे **पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** के नाम से जाने-पहिचाने लगे ।

आचार्य पदारुढ होने के बाद पूज्यश्री के वरद हस्तों से जैन-शासन की सुंदर आराधना प्रभावना हो रही है ।

निवेदक : दिव्य संदेश प्रकाशन ट्रस्ट मंडल

प्रस्तुत पुस्तक में सभी रंगीन चित्र
पू. आचार्य श्री जिनोत्तमसूरिजी म.सा. द्वारा आलेखित
'सुशील सद्बोध शतक' में से साभार लिये है ।

विवेचनकार की कलम से

तारक तीर्थंकर परमात्मा जगत् के जीवों के कल्याण के लिए जगत् के स्वरूप का यथार्थ निरूपण करते हैं । परमात्मा की उस देशना को गणधर भगवंत सूत्र रूप में गूंथते हैं । गणधरों के द्वारा रचित प्रभु की वह वाणी **'द्वादशांगी'** कहलाती है । इस द्वादशांगी में जैन दर्शन के समग्र श्रुतज्ञान का समावेश हो जाता है ।

गणधरों के द्वारा विरचित द्वादशांगी के परमार्थ को हर कोई व्यक्ति आसानी से नहीं समझ पाता है, इसलिए गणधर रचित उन मूल सूत्रों पर बाद में हुए महान् ज्ञानी आचार्यों ने निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि तथा टीका आदि की रचनाएँ की हैं ।

जिनागमों में निर्दिष्ट जैन धर्म के परम रहस्यों को समझने के लिए अनेक आचार्यों ने अनेक प्रकरण ग्रंथों की भी रचना की है । उन प्रकरणों के माध्यम से किसी पदार्थ विशेष का स्पष्ट बोध होता है ।

वादिवेताल श्रीमद् शांतिसूरिजी म. ने जिनागमों में निर्दिष्ट जीव तत्त्व का बहुत ही सुंदर संकलन **'जीव विचार'** नाम के प्रकरण ग्रंथ में किया है ।

प्रश्न : मोक्षमार्ग की साधना में आगे बढ़ने के लिए जीव तत्त्व को जानने की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर : संयम धर्म की साधना में 'जीवरक्षा' प्रधान है । जो जीव तत्त्व को अच्छी तरह से नहीं जानता हो, वह जीवरक्षा कैसे कर पाएगा ? अतः जीवरक्षा के लिए जीव के स्वरूप को जानना जरूरी है ।

रत्नत्रयी की आराधना, साधना का मूल सम्यग्दर्शन है । सम्यग्दर्शन के अभाव में सम्यग् ज्ञान व सम्यक्चारित्र का भी अभाव है । 'जीव आदि नौ तत्त्वों को अच्छी तरह से जानना, समझना और उन पर श्रद्धा करना ।' उसे सम्यक्त्व कहते हैं ।

नौ तत्त्वों को समझने के लिए सर्वप्रथम जीव तत्त्व को समझना बहुत जरूरी है । जो जीव तत्त्व को अच्छी तरह से नहीं समझता हो, वह अजीव तत्त्व को भी कैसे समझ पाएगा ?

जीव विचार प्रकरण में जीवों के सूक्ष्म भेदों का भी निरूपण है, जिसे जानने से पता चलता है कि अरिहंत परमात्मा का ज्ञान कितना अधिक सूक्ष्म है ।

जीव विचार का अध्ययन क्यों ?

पूर्वधर महर्षि आर्यरक्षितसूरिजी म. ने उन आगमों को चार अनुयोगों में विभाजित किया है ।

1) द्रव्यानुयोग 2) गणितानुयोग

3) चरणकरणानुयोग 4) धर्मकथानुयोग

1. द्रव्यानुयोग :- यह समस्त विश्व षड् द्रव्यात्मक है । इसमें जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय रूपी हैं, जबकि शेष धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल द्रव्य अरूपी हैं । इसमें छह द्रव्यों का वर्णन आता है ।

2. गणितानुयोग :- इस अनुयोग में गणित संबंधी बातें आती हैं । सूर्य-चंद्र आदि की गति, द्वीप-समुद्रों की लंबाई-चौड़ाई, क्षेत्रफल आदि का वर्णन आता है ।

3. चरण करणानुयोग :- इस अनुयोग में चारित्र संबंधी बातें आती हैं । साधु के आचार एवं श्रावकों के व्रत-अतिचार आदि का वर्णन आता है ।

4. धर्मकथानुयोग :- इस अनुयोग में महापुरुषों के जीवन-चरित्रों का वर्णन आता है । महापुरुषों के प्रेरणादायी जीवन-प्रसंगों का विस्तृत उल्लेख आता है ।

`जीव' तत्त्व के स्वरूप का वर्णन द्रव्यानुयोग में आता है । एक अपेक्षा से इन चार अनुयोगों में द्रव्यानुयोग की प्रधानता है ।

महोपाध्याय श्रीमद् **यशोविजयजी म.** ने **'द्रव्य गुण पर्याय'** के रास में कहा है-

'विना द्रव्य अनुयोग विचार, नहीं चरण करणनो सार ।'

द्रव्यानुयोग के स्पष्ट यथार्थ बोध के अभाव में `चारित्र-पालन की भी सफलता नहीं है ।'

आगे चलकर उन्होंने लिखा है-

'शुद्ध आहारादिक तनुयोग, मोटा कहीए द्रव्य अनुयोग ।'

साधु-जीवन में शुद्ध व निर्दोष आहार-पानी से जीवन यापन करना, विविध प्रकार की तपश्चर्या आदि करना, यह चारित्र योग है । परंतु द्रव्यानुयोग के विचार की तुलना में यह योग भी छोटा कहलाता है ।

इसका तात्पर्य है कि साधु-जीवन के श्रेष्ठ आचार-पालन के साथ द्रव्यानुयोग का अभ्यास खूब जरूरी है । द्रव्यानुयोग के यथार्थ बोध की उपेक्षा करके किया गया, कठोर चारित्र- पालन भी इतना लाभदायी नहीं बनता है ।

श्री सिद्धसेन दिवाकरसूरिजी ने भी कहा है-चरण करण में बहुत कुछ आगे बढ़ गए हों, परंतु जिन्होंने स्व समय और पर समय को नहीं जाना है, अर्थात् जिन्होंने द्रव्यानुयोग का अभ्यास नहीं किया है वे वास्तव में निश्चयनय से शुद्ध चारित्र के सार को जानते नहीं हैं ।''

'नवतत्त्व' प्रकरण में कहा है-

'जीवाइ नवपयत्थे जो जाणइ, तस्स होइ सम्मत्तं ।'

जो जीव आदि नौ तत्त्वों को जानता है, उसे सम्यक्त्व होता है । सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिए अथवा प्राप्त सम्यक्त्व की निर्मलता के लिए नौ तत्त्वों का यथार्थ बोध जरूरी है ।

नौ तत्त्वों में सर्व प्रथम व प्रधान तत्त्व `जीव' तत्त्व है ।

मोक्षमार्ग की आराधना साधना में आगे बढ़ने के लिए जीव तत्त्व को अच्छी तरह से समझना बहुत जरूरी है, क्योंकि अन्य सभी तत्त्वों का भी मुख्य आधार जीव तत्त्व ही है । दुनिया में किसी असली वस्तु को जानना-समझना हो तो उससे विपरीत नकली वस्तु को भी जानना बहुत जरूरी होता है ।

सोने को सही मायने में जानना है तो सोने से विपरीत वस्तुओं को भी जानना जरूरी है । जो सोना नहीं है, उसे जाने बिना सही सोने को भी जाना नहीं जा सकता है । इसी प्रकार जीव तत्त्व को जानना है तो उससे विपरीत जो **अजीव** तत्त्व है, उसे भी जानना बहुत जरूरी है ।

जीव को आगे बढ़ानेवाला `सत्कर्म' है और नीचे गिरानेवाला `असत्कर्म' है । उसी को **पुण्य** और **पाप** कहते हैं ।'

जीव के विकास और पतन को जानना हो तो पुण्य-पाप तत्त्व को भी जानना जरूरी है । अतः अजीव तत्त्व के बाद पुण्य और पाप तत्त्व आता है ।

अच्छे व बुरे काम करने पर आत्मा में शुभ व अशुभ कर्मों का आगमन होता है । आत्मा में कर्म के आने के मार्ग को ही **आस्त्रव** कहते हैं, अतः पुण्य पाप के बाद आस्त्रव तत्त्व को भी जानना जरूरी है ।

आस्त्रव का विरोधी **संवर** तत्त्व है, अतः आस्त्रव के बाद संवर तत्त्व का वर्णन आता है । अच्छे या बुरे कार्य करने पर आत्मा में जिन कर्मों का आगमन होता है, तब आत्मा उन कर्मों के साथ दूध व पानी या अग्नि व लोहे के मिश्रण की तरह एकमेक हो जाती है, उसी को **बंध** तत्त्व कहते हैं ।

आत्मा को निर्मल बनाना हो तो उस पर लगे कर्म के मैल को दूर करना जरूरी है । आत्मा पर लगे कर्म मैल को दूर करने की प्रक्रिया को ही **निर्जरा** कहते हैं अतः बंध के बाद निर्जरा तत्त्व का वर्णन होता है ।

आत्मा पर लगे कर्म मैल का सर्वथा दूर होना, इसी को मोक्ष कहा जाता है । इसलिए निर्जरा के बाद **मोक्ष** तत्त्व का वर्णन आता है ।

इससे स्पष्ट है कि जीव तत्त्व के स्वरूप को यथार्थ रूप में जानना हो तो अजीव आदि शेष आठ तत्त्वों को भी जानना जरूरी हो जाता है ।

जैन आगमों में अनेक जगह जीव तत्त्व के स्वरूप का वर्णन आता है । उन आगमों में से संगृहीत कर वादिवेताल श्री शांतिसूरिजी म. ने इस **'जीव विचार'** नाम के प्रकरण-ग्रंथ की रचना की है । इस प्रकरण में `जीव' तत्त्व के स्वरूप का संक्षेप में वर्णन किया है ।

अपनी आत्मा के उत्थान के लिए **'जीव विचार'** का स्वाध्याय अध्ययन बहुत जरूरी है क्योंकि जीव तत्त्व के यथार्थ स्वरूप को जाने बिना `जीव दया' अर्थात् संयम धर्म का पालन भी संभव नहीं है ।

दश वैकालिक ग्रंथ में ठीक ही कहा है–

'जो जीवे वि न याणेइ, अजीवे वि न याणेइ ।
जीवाजीवे अयाणंतो, कहं सो नाहीइ संजमं ।।'

जो व्यक्ति जीव तत्त्व को अच्छी तरह से जानता नहीं है, अजीव तत्त्व को अच्छी तरह से जानता नहीं है । जीव और अजीव तत्त्व को अच्छी तरह से जानता नहीं है, वह व्यक्ति संयम धर्म का अच्छी तरह से पालन कैसे कर पाएगा ? अतः संयम-चारित्र के पालन के लिए भी `जीव' तत्त्व को अच्छी तरह से जानना बहुत जरूरी है ।

पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि विकलेन्द्रिय और नारक पशु-पक्षी-देव-मनुष्य आदि पंचेन्द्रिय जीवों को नहीं जानता है, उसके लिए संयम धर्म का पालन अतिदुष्कर ही है ।

प्रस्तुत विवेचन के आलेखन में **जैन श्रेयस्कर मंडल-मेहसाणा** तथा चिकपेठ, बेंगलोर से प्रकाशित हिन्दी विवेचन की भी मदद ली है । मैं उन लेखकों का आभारी हूँ । जिनाज्ञा विरुद्ध कहीं आलेखन हुआ हो तो त्रिविध-त्रिविध मिच्छा मि दुक्कडम् !

आचार्य विजय रत्नसेनसूरि म.सा.

जीव-विचार

भुवण पईवं वीरं, नमिऊण भणामि अबुह बोहत्थं ।
जीव सरूवं किंचि वि, जह भणियं पुव्व सूरीहिं ।।1।।

जीवा मुत्ता संसारिणो य, तस थावरा य संसारी ।
पुढवी जल जलण वाऊ, वणस्सइ थावरा नेया ।।2।।

फलिह मणि रयण विद्दुम-हिंगुल-हरियाल-मणसिल रसिंदा ।
कणगाइ धाउ सेढी, वन्निय अरणेट्टय-पलेवा ।।3।।

अब्भय तूरी ऊसं, मट्टी पाहाण जाईओऽणेगा ।
सोवीरंजण लूणाइ, पुढवी भेआइ इच्चाइ ।।4।।

भोमंतरिक्खमुदगं, ओसा हिम करग हरितणु महिआ ।
हुंति घणोदहिमाइ, भेयाणेगा य आउस्स ।।5।।

इंगाल जाल मुम्मुर, उक्कासणि-कणग-विज्जुमाइआ ।
अगणि जियाणं भेया, नायव्वा निउण बुद्धीए ।।6।।

उब्भामग उक्कलिया, मंडलि मह सुद्ध गुंजवाया य ।
घण तणु वायाइआ, भेया खलु वाउकायस्स ।।7।।

साहारण पत्तेआ वणस्सइ-जीवा दुहा सुए भणिया ।
जेसिमणंताणं तणू, एगा साहारणा ते उ ।।8।।

कंदा अंकुर-किसलय-पणगा सेवाल भूमिफोडा य ।
अल्लयतिय गज्जर मोत्थ, वत्थूला थेग पल्लंका ।।9।।

कोमल फलं च सव्वं, गूढ सिराइं सिणाइ पत्ताइं ।
थोहरि कुंआरी गुग्गुलि गलोय पमुहाइ छिन्नरुहा ।।10।।

इच्चाइणो अणेगे, हवंति भेया अणंतकायाणं ।
तेसिं परिजाणणत्थं, लक्खणमेअं सुए भणियं ।।11।।

गूढ सिर संधि पव्वं सम-भंगमहीरगं च छिन्नरुहं ।
साहारणं सरीरं, तव्विवरीयं च पत्तेयं ।।12।।

एग सरीरे एगो, जीवो जेसिं तु ते य पत्तेया ।
फल-फूल-छल्लि-कट्ठा मूलग पत्ताणि बीयाणि ।।13।।

पत्तेयतरुं मुत्तुं, पंचवि पुढवाइणो सयललोए ।
सुहुमा हवंति नियमा, अंतमुहुत्ताउ अद्दिस्सा ।।14।।

संख कवड्डय गंडुल, जलोय चंदणग अलस लहगाइ ।
मेहरि किमि पूअरगा, बेइंदिय माइवाहाइ ।।15।।

गोमी मंकण जूआ, पिपीलि-उद्देहिया य मक्कोडा ।
इल्लिय घय मिल्लिओ, सावय गोकीड जाइओ ।।16।।

गद्दहय चोरकीडा, गोमय कीडा य धन्नकीडा य ।
कुंथु गोवालिय इलिया, तेइंदिय इंदगोवाइ ।।17।।

चउरिंदिया य बिच्छु, ढिंकुण भमरा य भमरिया तिड्डा ।
मच्छिय डंसा मसगा, कंसारी कविल डोलाइ ।।18।।

पंचिंदिया य चउहा, नारय-तिरिया-मणुस्स देवा य ।
नेरइया सत्तविहा, नायव्वा पुढवि-भेएणं ।।19।।

जलयर-थलयर-खयरा, तिविहा पंचिंदिया तिरिक्खा य ।
सुसुमार-मच्छ-कच्छव, गाहा मगरा य जलचारी ।।20।।

चउपय उरपरिसप्पा, भुयपरिसप्पा य थलयरा तिविहा ।
गो-सप्प-नउल-पमुहा, बोधव्वा ते समासेणं ।।21।।

खयरा रोमय-पक्खी, चम्मयपक्खी य पायडा चेव ।
नरलोगाओ बाहिं समुग्गपक्खी वियय-पक्खी ।।22।।

सव्वे जल थल खयरा, संमूच्छिमा गब्भया दुहा हुंति ।
कम्मा-कम्मग भूमि, अंतरदीवा मणुस्सा य ।।23।।

दसहा भवणाहिवइ, अट्ठविहा वाणमंतरा हुंति ।
जोइसिया पंचविहा, दुविहा वेमाणिया देवा ।।24।।

सिद्धा पनरस भेया, तित्था-तित्थाइ सिद्ध भेएणं ।
एए संखेवेणं, जीव विगप्पा समक्खाया ।।25।।

एएसिं जीवाणं, सरीर-माऊ ठिई सकायम्मि ।
पाणा जोणि पमाणं, जेसिं जं अत्थि तं भणिमो ।।26।।

अंगुल असंखभागो, सरीरमेगिंदियाण सव्वेसिं ।
जोयण सहस्समहियं, नवरं पत्तेयरुक्खाणं ।।27।।

बारस जोयण तिन्नेव, गाउआ जोयणं च अणुक्कमसो ।
बेइंदिय-तेइंदिय, चउरिंदिय देहमुच्चत्तं ।।28।।

धणुसयपंचपमाणा, नेरइया सत्तमाइ पुढवीए ।
तत्तो अद्धद्धूणा, नेया रयणप्पहा जाव ।।29।।

जोयण सहस्स माणा, मच्छा उरगा य गब्भया हुंति ।
धणुह पुहुत्तं पक्खीसु, भुयचारी गाउअ पुहुत्तं ।।30।।

खयरा धणुह पुहुत्तं, भुयगा उरगा य जोयण पुहुत्तं ।
गाउअ पुहुत्त मित्ता, संमुच्छिमा चउप्पया भणिया ।।31।।

छच्चेव गाउआईं, चउप्पया गब्भया मुणेयव्वा ।
कोसतिगं च मणुस्सा, उक्कोस सरीरमाणेणं ।।32।।

ईसाणंत सुराणं, रयणीओ सत्त हुंति उच्चत्तं ।
दुग दुग दुग चउ गेविज्जणुत्तरेक्किक्क परिहाणी ।।33।।

बावीसा पुढवीए, सत्त य आउस्स तिन्नि वाउस्स ।
वास सहस्सा दस तरु, गणाण तेऊ तिरत्ताउ ।।34।।

वासाणि बारसाऊ, बेइंदियाणं तेइंदियाणं तु ।
अउणापन्न दिणाइं, चउरिंदीणं तु छम्मासा ।।35।।

सुरनेरइयाण ठिई, उक्कोसा सागराणि तित्तीसं ।
चउपय-तिरिय मणुस्सा, तिन्नि य पलिओवमा हुंति ।।36।।

जलयर उर भुयगाणं, परमाऊ होई पुव्वकोडीओ ।
पक्खीणं पुण भणिओ, असंखभागो य पलियस्स ।।37।।

सव्वे सुहुमा साहारणा य, संमुच्छिमा मणुस्सा य ।
उक्कोस जहन्नेणं, अंत-मुहुत्तं चिय जियंति ।।38।।

ओगाहणाउ-माणं, एवं संखेवओ समक्खायं ।
जे पुण इत्थ विसेसा, विसेस सुत्ताउ ते नेया ।।39।।

एगिंदिया य सव्वे, असंख उस्सप्पिणी सकायम्मि ।
उववज्जंति चयंति य, अणंतकाया अणंताओ ।।40।।

संखिज्ज समा विगला, सत्तट्ठ भवा पणिंदि तिरि मणुआ ।
उववज्जंति सकाए, नारय देवा य नो चेव ।।41।।

दसहा जिआण पाणा, इंदिय ऊसास आउबल रूवा ।
एगिंदिएसु चउरो, विगलेसु छ सत्त अट्ठेव ।।42।।

असन्नि सन्नि पंचिंदिएसु नव दस कमेण बोधव्वा ।
तेहिं सह विप्पओगो, जीवाणं भन्नए मरणं ।।43।।

एवं अणोर पारे, संसारे सायरम्मि भीमम्मि ।
पत्तो अणंत-खुत्तो, जीवेहिं अपत्त-धम्मेहिं ।।44।।

तह चउरासी लक्खा संखा जोणीण होइ जीवाणं ।
पुढवाइण चउण्हं, पत्तेयं सत्त सत्तेव ।।45।।

दस पत्तेय तरूणं, चउदस लक्खा हवंति इयरेसु ।
विगलिंदिएसु दो दो, चउरो पंचिंदि-तिरियाणं ।।46।।

चउरो चउरो नारय, सुरेसु मणुआण चउदस हवंति ।
संपिंडिया य सव्वे, चुलसी लक्खा उ जोणीणं ।।47।।

सिद्धाणं नत्थि देहो, न आउ कम्मं न पाण-जोणीओ ।
साइ अणंता तेसिं, ठिइ जिणिंदागमे भणिया ।।48।।

काले अणाइ-निहणे, जोणि गहणम्मि भीसणे इत्थ ।
भमिया भमिहिंति चिरं, जीवा जिणवयणमलहंता ।।49।।

ता संपइ संपत्ते, मणुअत्ते दुल्लहे वि सम्मत्ते ।
सिरि संति सूरि सिट्ठे, करेह भो उज्जमं धम्मे ।।50।।

एसो जीववियारो, संखेवरुइण जाणणा हेऊ ।
संखित्तो उद्धरिओ, रुद्दाओ सुय-समुद्दाओ ।।51।।

वादिवेताल श्री शांतिसूरिजी विरचित जीवविचार सूत्र

भुवण पईवं वीरं, नमिऊण भणामि अबुह-बोहत्थं ।
जीव-सरूवं किंचि वि, जह भणियं पुव्व-सूरीहिं ।।1।।

शब्दार्थ :- भुवण=तीन लोक **पईवं=**प्रदीप समान **वीरं=**महावीर प्रभु को **नमिऊण=**नमस्कार करके **भणामि=**कहता हूँ । **अबुह बोहत्थं=**अज्ञानी लोगों के बोध के लिए **जीवसरूवं=**जीव का स्वरूप **किंचिवि=**कुछ **जह=**जिस प्रकार **भणियं=**कहा है **पुव्व सूरीहिं=**पूर्वाचार्यों ने ।

भावार्थ :- त्रिभुवन में दीपक समान ऐसे महावीर परमात्मा को नमस्कार करके, अज्ञानीलोगों के बोध के लिए जिस प्रकार पूर्व के महान् आचार्यों ने जीव का स्वरूप कहा है, तदनुसार मैं भी जीवों का कुछ स्वरूप कहता हूँ ।

विवेचन :- कोई भी ग्रंथकार महर्षि जब किसी ग्रंथ का प्रारंभ करते हैं, तब सर्वप्रथम मंगलाचरण, विषय निर्देश, संबंध, ग्रंथ का प्रयोजन और ग्रंथ के अधिकारी का निर्देश अवश्य करते हैं, क्योंकि इन सबकी जानकारी के अभाव में पाठक, विद्यार्थी को उस ग्रंथ के अध्ययन में रस पैदा नहीं होता है ।

1. मंगलाचरण :- किसी भी प्रकार की शुभ प्रवृत्ति का प्रारंभ करने से पहले मंगल किया जाता है, क्योंकि मंगल करने से बीच मार्ग में आनेवाले विघ्नों का नाश हो जाता है और कार्य की निर्विघ्नतया समाप्ति होती है । दही, गुड़, शुभ शकुन आदि द्रव्य मंगल कहलाते हैं, उनसे विघ्नों का नाश होगा ही ऐसी कोई गारंटी नहीं है, परंतु प्रभु का नामस्मरण, प्रभु को नमस्कार यह भाव मंगल पैदा करता है, जो अवश्य ही विघ्नों का नाश करता है ।

ग्रंथकार महर्षि वादिवेताल शांतिसूरिजी म. भी सर्वप्रथम **'त्रिभुवन में दीपक समान महावीर प्रभु को नमस्कार करके'** इस पद द्वारा प्रभु को नमस्कार रूप मंगलाचरण कर रहे हैं ।

प्रभु को नमस्कार यह भावमंगल है, जो अवश्य ही विघ्नों का नाश करता है ।

यहाँ महावीर प्रभु को दीपक की उपमा दी है, क्योंकि दीपक को कहीं भी आसानी से ले जाया जा सकता है, प्रभु का ज्ञान भी दीपक के समान है ।

जिस प्रकार दीपक बाहर के अंधकार को दूर करता है, उसी प्रकार प्रभु हमारे भीतर रहे अज्ञान व मोहरूपी अंधकार को दूर करते हैं ।

केवलज्ञान की प्राप्ति के द्वारा प्रभु के भीतर रहा अज्ञान अंधकार तो दूर हुआ ही, परंतु समवसरण में बैठकर धर्मदेशना देकर प्रभु जगत् के जीवों के अज्ञान अंधकार को भी दूर करते हैं ।

ग्रंथ के प्रारंभ में मंगलाचरण यह शिष्ट पुरुषों का आचार है । आचार की यह परंपरा शिष्य-परंपरा में भी बनी रहे, इसी उद्देश्य से ग्रंथकार भी ग्रंथ के प्रारंभ में मंगलाचरण करते हैं ।

ग्रंथ के प्रारंभ में मंगलाचरण करने से ग्रंथकर्ता, ग्रंथ पढ़ने व पढ़ानेवाले के भी विघ्नों का नाश होता है ।

2. विषयनिर्देश :- 'जीवों का यत्किंचित् स्वरूप' इस पद के द्वारा प्रस्तुत ग्रंथ के विषय Subject का निर्देश किया है अर्थात् इस ग्रंथ में जीव के यथार्थ-स्वरूप का वर्णन किया जाएगा ।

3. संबंध :- ग्रंथकार महर्षि प्रकरण ग्रंथ की रचना स्वेच्छानुसार नहीं कर रहे है, बल्कि भूतकाल में हुए पूर्वाचार्य महर्षियों ने जिस प्रकार जीव के स्वरूप का वर्णन किया है, उसी के अनुसार **'यहाँ मैं जीव का स्वरूप समझाऊंगा ।'** इस प्रकार कहकर उन्होंने पूर्व महर्षियों के साथ गुरु-परंपरा का संबंध बतलाया है ।

अन्य प्रकार से भी संबंध जोड़ सकते हैं । जैसे जीव का स्वरूप वाच्य है और प्रस्तुत ग्रंथ के शब्द जीव स्वरूप के वाचक हैं, अतः **वाच्य-वाचक** संबंध हुआ ।

जीव स्वरूप का ज्ञान **उपेय** है और प्रस्तुत ग्रंथ उस स्वरूप को जानने का **उपाय** है ।

4. प्रयोजन :- ग्रंथ की रचना के उद्देश्य को प्रयोजन कहते हैं । प्रस्तुत ग्रंथ की रचना का मुख्य उद्देश्य अज्ञानी जीवों को जीव के स्वरूप का बोध कराना है ।

प्रयोजन दो प्रकार का होता है-अनंतर और परंपर । प्रस्तुत ग्रंथ का अनंतर प्रयोजन पाठकों को जीव तत्त्व विषयक ज्ञान कराना है, जबकि परंपर-प्रयोजन मोक्ष प्राप्ति है ।

ग्रंथकार महर्षि उपदेश देकर कर्मनिर्जरा करते हैं, जिसके फल-स्वरूप वे भी अल्प भवों में कर्म के बंधन से मुक्त होकर शाश्वत अजरामर मोक्ष पद प्राप्त करते हैं ।

प्रस्तुत ग्रंथ के अध्ययन से श्रोता को भी सत्य तत्त्व का बोध होता है,

जिसके फलस्वरूप वह उपादेय में प्रवृत्ति और हेय से निवृत्ति करता है, इस आराधना के फलस्वरूप वह भी अल्पभवों में भव के बंधन से मुक्त बनता है ।

5. अधिकारी :- धर्म का उपदेश हमेशा योग्य व्यक्ति को ही दिया जाता है, क्योंकि अयोग्य व्यक्ति को दिया गया उपदेश तो लाभ के बदले नुकसान ही करता है । जो व्यक्ति आत्महित चाहता है और जो जीव तत्त्व को जानता नहीं है, ऐसी अज्ञानी आत्मा इस सूत्र को पढ़ने की अधिकारी है ।

जीवों के भेद

जीवा मुत्ता संसारिणो य, तस थावरा य संसारी ।
पुढवी जल जलण वाऊ, वणस्सइ थावरा नेया ।।2।।

शब्दार्थ :- जीवा=जीव **मुत्ता=**मुक्त **संसारिणो=**संसारी **य=**तथा **तस=**त्रस **थावरा=**स्थावर **संसारी=**संसारी **पुढवी=**पृथ्वी **जल=**पानी **जलण=**अग्नि **वाऊ=**वायु **वणस्सइ=**वनस्पति **थावरा=**स्थावर **नेया=**जानने चाहिए ।

भावार्थ :- जीवों के मुख्य दो भेद हैं-मुक्त और संसारी । संसारी जीवों के दो भेद हैं त्रस और स्थावर । स्थावर जीवों के 5 भेद हैं-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ।

विवेचन :- 'जीवविचार' प्रकरण की रचना का मुख्य उद्देश्य पाठकों को संसारी जीवों के भेद-प्रभेद का परिचय कराना है । जीवों के यथार्थ स्वरूप को जानने वाला ही आसानी से जीवरक्षा कर सकता है, अतः प्रारंभ में जीवों के 'मुक्त और संसारी' दो भेद बतलाकर समग्र प्रकरण में संसारी जीवों के स्वरूप का वर्णन किया है ।

मुक्त अर्थात् मोक्षगत आत्माएँ । कर्म के बंधन से सर्वथा मुक्त बनी आत्मा को मुक्तात्मा कहते हैं । मुक्त बनी आत्मा जन्म-जरा और मृत्यु के बंधन से सर्वथा रहित होती है । आत्मा के संसार की मुख्य जड़ कर्म है और कर्म का मुख्य आधार राग और द्वेष है । राग-द्वेष से मुक्त बनी आत्मा कर्म से मुक्त बनती है और कर्म से मुक्त बनी आत्मा अशरीरी होती है ।

सभी सिद्ध भगवंत स्वरूप से एक समान होते हैं । जो कुछ भेद है-वह सब संसारी जीवों में है, अतः आगे संसारी जीवों के भेद-प्रभेद बतलाते हैं ।

संसारी जीव के मुख्य दो भेद हैं-त्रस और स्थावर ।

त्रस जीव : जो जीव सुख-दुःख में अपनी इच्छानुसार गमनागमन कर सकते हैं, वे त्रस जीव कहलाते हैं । यद्यपि तेउकाय और वायुकाय को

भी गति त्रस कहा गया है, परंतु वह सिर्फ उनमें होनेवाली बाह्य गति के कारण है, स्वरूप से तो वे स्थावर ही हैं, क्योंकि उनमें जो गति है, वह उनकी इच्छा के अनुसार नहीं है ।

स्थावर :- सुख-दुःख के प्रसंगों में जो जीव इच्छानुसार गति नहीं कर सकते हैं, वे स्थावर कहलाते हैं ।

पृथ्वीकाय के भेद

फलिह-मणि-रयण-विद्दुम-हिंगुल-हरियाल-मणसिल रसिंदा ।
कणगाइ धाउ सेढी, वन्निय अरणेट्टय-पलेवा ।।3।।

अब्भय तूरी ऊसं, मट्टी पाहाण जाइओऽणेगा ।
सोवीरंजण लूणाइ, पुढवी भेआइ इच्चाइ ।।4।।

शब्दार्थ :- फलिह=स्फटिक **मणि=**चंद्रकांत मणि **रयण=**रत्न **विद्दुम=**मूंगा **हिंगुल=**हिंगुल **हरियाल=**हरताल **मणसिल=**मैनसिल **रसिंदा=**पारा **कणगाइ=**सोना आदि **धाउ=**धातु **सेढी=**खटिका **वन्निय=**लालमिट्टी **अरणेट्टय=**सफेद मिट्टी **पलेवा=**पलेवक **अब्भय=**अभ्रक **तूरी=**तेजंतूरी **ऊसं=**ऊसर भूमि **मट्टी पाहाण=**मिट्टी और पत्थर **अणेगा=**अनेक **जाइओ=**जातियाँ **सोवीरंजन=**सुरमा **लुणाइ=**नमक **इच्चाइ=**इत्यादि **भेआइ=**भेद है ।

भावार्थ :- स्फटिक मणि, रत्न, परवाल, हिंगुल, हरताल, पारा, सोना आदि धातुएँ, खड़िया, रमची, पत्थरों के टुकड़ों से मिली सफेद मिट्टी, पलेवक, अभ्रक, तेजंतूरी, क्षार मिट्टी और पत्थर की अनेक जातियाँ, सुरमा, नमक इत्यादि पृथ्वीकाय के भेद हैं ।

विवेचन :- इन दो गाथाओं में पृथ्वीकाय के जीवों के कुछ नाम बतलाए हैं । पृथ्वीकाय के इन भेदों को जानने से पता चलता है कि आज अधिकांश लोगों को पृथ्वीकाय के कलेवरों (मुर्दो) के संग्रह में ही ज्यादा रस है । यद्यपि कोई भी इंसान किसी मुर्दे को अपने घर में रखना नहीं चाहता है, जब कि सोना, चांदी, रत्न आदि रूप पृथ्वीकाय के कलेवरों के संग्रह में ही उसे आनंद आता है ।

पृथ्वीकाय के जीवों के कुछ नाम इस प्रकार हैं-

1. स्फटिक :- जिसके आरपार Transparent देख सकते हैं, ऐसे कीमती पत्थर को स्फटिक कहते हैं । अंग्रेजी में उसे Crystal कहते हैं । मूर्ति अथवा सजावट की वस्तुएँ बनाने में इसका उपयोग होता है । पहले स्फटिक को घिसकर उसमें से चश्मे के कांच बनाए जाते थे ।

2. मणि :- चिंतामणि जैसे उत्तम रत्न और मोती समुद्र में से प्राप्त होते हैं, फिर भी वे पृथ्वीकाय रूप ही हैं । इनकी अनेक जातियाँ हैं ।

3. रत्न :- खान में से निकलनेवाले कीमती व चमकते पत्थर रत्न कहलाते हैं । हीरा, माणेक, पन्ना, नीलम, कर्केतन तथा अरिष्ट आदि रत्नों के ही प्रकार हैं ।

4. विद्रुम :- यह समुद्र में से मिलता है । गुलाबी लालरंग का पत्थर होता है । आयुर्वेद में औषध के रूप में इस पत्थर की भस्म (प्रवाल पिष्टि) का उपयोग होता है ।

5. हिंगुल :- अंदर पारा होने से कुछ वजनदार लाल रंग का यह हिंगुल आता है । पहले औरते सौभाग्यसूचक गोल तिलक करने में इसका उपयोग करती थीं । चित्रकला में भी इसकी स्याही का उपयोग होता था ।

6. हरताल :- खान में से निकलनेवाली पीली मिट्टी । प्राचीन समय में लिखे हुए अक्षरों को मिटाने में इसका उपयोग होता था । कई औषधियों में भी इसका उपयोग किया जाता है ।

7. मनशील :- यह भी हरताल की तरह जहरीला पदार्थ होता है और इसका उपयोग कई औषधियों में होता है ।

8. पारा :- खान में से निकलनेवाला यह एक प्रवाही पदार्थ है । बुखार मापने के लिए थर्मामीटर में इसी का उपयोग किया जाता है । अंग्रेजी में इसे Mercury (मर्क्युरी) कहते हैं । तांबे व पीतल के आभूषणों पर सोने का गिलेट (चमक) करने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है । कांच व मर्क्युरी ट्यूब लाइट आदि में भी इसका उपयोग होता है ।

9. धातुएँ :- सोना, चांदी, तांबा, रांगा, सीसा, जस्ता, लोहा, पीतल, कांसा तथा जर्मन सिल्वर आदि सभी धातुएँ भी पृथ्वीकाय स्वरूप हैं । खान में मिट्टी के साथ ये धातुएँ होती हैं । खान में से बाहर निकालकर अग्नि व तेजाब द्वारा उन्हें शुद्ध किया जाता है । ये धातुएँ मिट्टी के साथ हों तब

पृथ्वीकाय रूप और अग्नि में पिघलने पर अग्निकाय रूप व वापस जम जाने पर अचित्त हो जाती हैं ।

10. खड़ी :- चूने से मिलता-जुलता यह पदार्थ है । मकान की सफेदी में इसका उपयोग होता है । ब्लेक बोर्ड पर लिखने के लिए चॉक भी इसी से बनती है ।

11. हरमची (वर्णिक) :- गुजराती में इसे रमची कहते हैं । कुंभकार मिट्टी के घड़े, खिलौने आदि के ऊपर रंग चढ़ाने के लिए इस मिट्टी का उपयोग करता है । यह भी पृथ्वीकाय स्वरूप है ।

12. अरणेट्टय :- यह कोमल पत्थर की जाति है ।

13. पलेवक :- काले रंग के भारी और चिकने पत्थर की यह जाति है । इस पाषाण में भगवान की प्रतिमाएँ भी बनती हैं । इस पाषाण में सूक्ष्म खुदाइ की कलाकृति हो सकती है ।

14. अभ्रक :- अलग-अलग पांच रंग के चमकीले होते है, खान में से निकलते हैं ।

15. तेजंतूरी :- प्राचीन धातु रसायणवादियों की यह मान्यता थी कि तेजंतूरी के संसर्ग से लोहे का रस सोना बन जाता है ।

तुरी का अर्थ फिटकरी भी होता है, पानी को शुद्ध करने के लिए औषध प्रयोग में और वस्त्रों को रंगने में इसका उपयोग किया जाता है ।

16. खार :- साबुन, पापड़ आदि बनाने में इसका उपयोग होता है । साजीखारा भी इसी का प्रकार है । ईनो, फ्रूट साल्ट में भी इसी खार का उपयोग होता है । इस खार के फैलने से भूमि अनुपजाऊ या बंजर बन जाती है ।

17. मिट्टी :- देश-विदेश में मिलनेवाली सभी प्रकार की मिट्टियाँ भी पृथ्वीकाय रूप ही हैं । मिट्टी के मुख्य पाँच रंग हैं-सफेद, पीली, लाल, हरी और काली मिट्टी ।

18. पत्थर :- कठोर, मुलायम, चिकना, उबड़खाबड़, हल्का व भारी ऐसे अनेक गुणधर्मवाले अनेक पत्थर होते हैं, वे सभी पृथ्वीकाय स्वरूप हैं । ग्रेनाइट, स्टोन, मार्बल आदि सभी पत्थरों की जातियाँ पृथ्वीकाय रूप हैं ।

19. सौवीर-अंजन :- सिंधु सौवीर अर्थात् अफगानिस्तान, पाकिस्तान

व कच्छ का रणप्रदेश । इस देश में प्राप्त एक पदार्थ जो आँख में आँजने के काम आता है । इसे सुरमा भी कहते है ।

अपना कर्त्तव्य

सूक्ष्म बुद्धि से पृथ्वीकाय के स्वरूप को अच्छी तरह से समझना चाहिए । भूमि को खोदने पर जो मिट्टी निकलती है, वह सचित्त होती है । खान में से निकलने वाला पत्थर सचित्त होता है । सूर्य का ताप, बाहर की गर्मी व गर्म हवा आदि के वातावरण से वह पृथ्वी अचित्त हो जाती है ।

पृथ्वीकाय के जीवों का शरीर बहुत ही सूक्ष्म होता है । सभी स्त्रियों में अधिक शक्तिशाली ऐसी चक्रवर्ती की पट्टरानी वज्ररत्न की घंटी में कच्चे नमक को छह मास तक पीसे तो भी नमक के कई जीवों को घंटी के पाट का स्पर्श भी नहीं हुआ होता है ।

पृथ्वीकाय का आश्रय करके अप्काय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय आदि अनेक जीव रहे होते हैं, अतः भूमि को खोदने से, खेती करने से, पर्वत को तोड़ने से, पृथ्वीकाय के साथ अन्य असंख्य अनंत जीवों का भी नाश हो जाता है ।

पृथ्वीकाय के जीवों के स्वरूप को अच्छी तरह से जानकर उन जीवों के रक्षण के लिए अपना योग्य प्रयत्न होना चाहिए ।

पृथ्वीकाय

तीन भुवन में मुख्य 8 पृथ्वियाँ हैं :—

1) रत्नप्रभा :- इसकी मोटाई 1,80,000 योजन एवं चौड़ाई एक राजलोक प्रमाण है ।

2) शर्कराप्रभा :- इसकी मोटाई 1,32,000 योजन एवं चौड़ाई ढाई राजलोक प्रमाण है ।

3) वालुकाप्रभा :- इसकी मोटाई 1,28,000 योजन एवं चौड़ाई चार राजलोक प्रमाण है ।

4) पंकप्रभा :- इसकी मोटाई 1,20,000 योजन एवं चौड़ाई पांच राजलोक प्रमाण है ।

5) धूमप्रभा :- इसकी मोटाई 1,18,000 योजन एवं चौड़ाई छह राजलोक प्रमाण है ।

6) तमःप्रभा :- इसकी मोटाई 1,16,000 योजन एवं चौड़ाई साढे छह राजलोक प्रमाण है ।

7) महातमःप्रभा :- इसकी मोटाई 1,08,000 योजन एवं चौड़ाई सात राजलोक प्रमाण है ।

8) सिद्धशिला :- यह पृथ्वी 45 लाख योजन चौड़ी (गोलाकार) है बीच में 8 योजन मोटी व किनारे पर मक्खी की पाँख की तरह पतली है । अनुत्तर देव विमान से 12 योजन ऊपर आकाश में रही है ।

ये सभी पृथ्वियाँ सचित्त पृथ्वीकाय रूप हैं । इनमें बादर पर्याप्त-अपर्याप्त पृथ्वीकाय के जीव होते हैं । इन पृथ्वियों में समय-समय पर असंख्य जीव मरते हैं और पैदा होते हैं ।

इसके सिवाय जगत् में जितनी पत्थर, रत्न व धातु की खानें हैं, जितने पहाड़ हैं, वे सब सचित्त बादर पृथ्वीकाय रूप हैं । समुद्र, तालाब, नदी कुए में रही मिट्टी, कंकड़, पत्थर, देवों के विमान, अलंकार आदि बादर पृथ्वीकाय रूप हैं ।

पृथ्वीकाय के आयुष्य का बंध

पृथ्वीकाय स्वरूप सोना, चांदी, रत्न आदि में तीव्र राग भाव हो, मकान की टाइल्स, संगमरमर की दीवारें आदि देखकर खुश होने से, उनमें तीव्र राग भाव करने से पृथ्वीकाय के योग्य आयुष्य का बंध होता है ।

भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और प्रथम दो वैमानिक के देवता भी रत्न आदि की आसक्ति के कारण मरकर पृथ्वीकाय में पैदा हो जाते हैं तो मनुष्य मरकर पृथ्वीकाय में जाय, इसमें क्या आश्चर्य है !

पृथ्वीकाय के कुल जीव असंख्याता हैं । बादर पृथ्वीकाय के 1 कण में जितने जीव हैं, वे सातों नरकों के जीवों से भी असंख्य गुणे अधिक हैं अथवा चारों निकाय के देवताओं से भी असंख्य गुणे अधिक हैं ।

जीव संख्या

एक आँवले प्रमाण पृथ्वीकाय में जितने जीव हैं, वे सरसव के दाने जितना अपना शरीर बना दें तो 1 लाख योजन प्रमाण का जंबुद्वीप भी छोटा पड़ जाता है ।

पृथ्वीकाय जीवों की हिंसा

1) खेत में हल चलाने से ।

2) घोड़े-हाथी पशुओं के चलने से ।

3) पर्वत आदि पर आग लगने से ।

4) ईंट आदि को आग में पकाने से ।

5) पानी आदि के संयोग से ।

अप्काय जीवों के भेद

भोमंतरिक्ख-मुदगं, ओसा-हिम करग हरितणु महिआ ।
हुंति घणोदहिमाइ, भेयाणेगा य आउस्स ।।5।।

शब्दार्थ :- भोम=भूमि संबंधी **अंतरिक्खं=**आकाश का **उदगं=**पानी **ओसा=**ओस **हिम=**बर्फ **करग=**ओले **हरितणु=**वनस्पति पर फूटकर निकला पानी **महिआ=**कोहरा अथवा वर्षा की छोटी-छोटी जल बूंदें **घनोदहिं=**घनोदधि **आइ=**आदि **भेया=**भेद **अणेगा=**अनेक प्रकार के **आउस्स=**अप्काय के **हुंति=**हैं ।

भावार्थ :- भूमि का पानी, आकाश का पानी, ओस, बर्फ, ओले, हरी वनस्पति पर फूटकर निकला हुआ पानी, बादलों से गिरनेवाले छोटे-छोटे जल-कण, कोहरा तथा घनोदधि आदि अप्काय के अनेक भेद हैं ।

विवेचन :- यद्यपि सभी प्रकार के पानी में अप्काय के जीव होते हैं, फिर भी बाह्य आकार आदि की दृष्टि से अप्काय जीवों के अनेक प्रकार बतलाए हैं ।

1) भूमि संबंधी जल :- भूमि संबंधी पानी को भौम जल कहते हैं । कुए, तालाब, बावड़ी, नदी, झरना, स्त्रोत, कुंड आदि में जमीन में से जो सिराएँ फूट निकलती हैं उसे भौम जल या भूमि संबंधी पानी कहते हैं । हैण्डपम्प से भी जो पानी जमीन में से बाहर आता है, वह भी भूमि संबंधी जल कहलाता है ।

2. आकाश (अंतरिक्ष) जल :- Rainwater वर्षा ऋतु में आकाश में से बादलों से जो पानी बरसता है, उसे आकाश जल कहते हैं । भाप बनकर

जो पानी बादल के रूप में बदलता है और फिर वही जल वर्षा के रूप में बरसता है, उसे अंतरिक्ष जल कहते हैं ।

3. ओस का पानी Dew :- सर्दी के दिनों में कई बार सूर्योदय के आसपास समय में आकाश से सूक्ष्म जलकण बरसते हैं, जिससे वातावरण आर्द्र बन जाता है । उसे ओस कहते हैं । यह ओस भी अप्काय स्वरूप है । सूर्य के ताप और पवन से ये ओस बिंदु सूख जाते हैं ।

4. बर्फ Ice :- बर्फ भी अप्काय के जीवों का ही शरीर है । कच्चे पानी की प्रत्येक बूंद में अप्काय के असंख्य जीव रहते हैं तो बर्फ के प्रत्येक कण में भी अप्काय के असंख्य जीव हैं ।

पानी को गर्म करके या अन्य-अन्य वस्तुओं के मिश्रण द्वारा उसे अचित्त किया जा सकता है, जबकि **बर्फ हमेशा सचित्त ही रहता है । अतः उसके भक्षण का निषेध किया गया है ।**

पानी की अपेक्षा बर्फ में अप्काय के जीव अतिघनत्व करके रहे हुए हैं, अतः पानी की अपेक्षा **बर्फ में अत्यधिक हिंसा है ।**

गृहस्थ को जीवननिर्वाह के लिए पानी अनिवार्य है, परंतु बर्फ अनिवार्य नहीं है, अतः बर्फ अभक्ष्य माना गया है ।

आइस्क्रीम व कुल्फी जैसे जमे हुए अन्य जलीय पदार्थ भी बर्फ की तरह अभक्ष्य माने गए हैं ।

जीवों के उत्पत्ति स्थान को योनि कहते हैं । ये योनियाँ तीन प्रकार की होती हैं-शीत, उष्ण और शीतोष्ण ।

शीत योनि वाले अन्य द्वीन्द्रिय आदि जीवों के लिए पानी स्वयं योनि का काम करता है । पानी स्वयं जीव स्वरूप तो है ही, परंतु पानी का आश्रय करके भी अनेक जीव पानी में पैदा होते हैं । अतः पानी की हिंसा में सिर्फ अप्काय की ही हिंसा नहीं है, बल्कि उसके आश्रित रहे हुए अन्य त्रसजीवों की भी हिंसा रही हुई है ।

पानी की तरह बर्फ का आश्रय करके भी अन्य त्रस जीव रहे होते हैं, अतः **बर्फ का अवश्य त्याग करना चाहिए ।**

5. करा Ice Ball :- कभी-कभी वर्षाऋतु में बर्फ के गोलाकार पत्थर

की तरह अत्यंत कठोर टुकड़े गिरते हैं जिनको करा कहते हैं । ये भी अप्काय स्वरूप हैं ।

6. हरितणु :- कई बार आर्द्र वातावरण में वनस्पति के पत्ते, फूल, फल आदि पर जलबिंदु दिखाई देते हैं । वह भी अप्काय स्वरूप है ।

7. कोहरा Fog :- सर्दी के दिनों में कई बार बाहर के वातावरण में कोहरा Fog छा जाता है । गुजराती में इसे 'धुम्मस' कहते हैं । ठंडे प्रदेशों में कई बार दिन में यह कोहरा छा जाता है, इस वातावरण में बाहर कुछ दिखता भी नहीं है । ऐसे वातावरण में वाहनों को भी धीमी गति से चलाया जाता है, अन्यथा Accident का खतरा रहता है ।

यह कोहरे का वातावरण भी जैनदृष्टि से संपूर्ण अप्कायमय है, इसी कारण इस वातावरण में साधु-साध्वी के लिए विहार का निषेध है, यावत् इधर-उधर गमनागमन का भी निषेध होता है । उन जीवों की रक्षा के लिए कामली ओढकर एक ही जगह बैठ जाने का विधान है । इसके पीछे भी अप्काय के उन जीवों की रक्षा का ही ध्येय है ।

कामली काल :- जैन आगमों में साधु-साध्वी व पौषध व्रतधारियों के लिए कामली काल का विधान है । रात्रि में, सूर्योदय के बाद कुछ समय तक एवं सूर्यास्त के कुछ समय पहले के काल को कामली काल कहते हैं । उस समय चारों ओर का वातावरण अप्कायमय होता है । अषाढ़ चातुर्मास में सूर्यास्त पूर्व छह घड़ी और सूर्योदय बाद छह घड़ी का काल, कार्तिक चातुर्मास में सूर्यास्त पूर्व चार घड़ी व सूर्योदय बाद चार घड़ी एवं फाल्गुण चातुर्मास में सूर्यास्त पूर्व दो घड़ी व सूर्योदय बाद दो घड़ी के काल को कामली काल कहते हैं । इस पीरियड में साधु-साध्वीजी को खुले आकाश में बाहर जाने का निषेध है, अनिवार्य कारणवश जाना पड़े तो उन्हें गर्म कामली ओढ़कर जाने का विधान है । इसके पीछे उन जीवों की रक्षा का ही ध्येय है । अपने शरीर की उष्णता का स्पर्श होने पर वे जीव मर जाते हैं, अतः उनकी रक्षा के लिए ऊनी वस्त्र का विधान है । ऊनी वस्त्र धारण न करे तो अपने शरीर की उष्णता से वे जीव तत्काल मर जाते हैं । अतः ऊनी कामली के पीछे अप्काय रक्षा का ही ध्येय है ।

8. घनोदधि :- अधोलोक में रही नरक पृथ्वियाँ और ऊपर रहे सभी विमान घनोदधि, घनवात और तनवात पर टिके हुए हैं । घन अर्थात् गाढ़,

जमा हुआ उदधि अर्थात् पानी का संग्रह । यह घनोदधि भी अप्काय स्वरूप है। उसमें प्रतिसमय अप्काय के असंख्य जीव पैदा होते हैं और अपना आयुष्य पूर्णकर मरते रहते हैं ।

अप्काय जीवों के रक्षण के लिए ही साधु-जीवन में सचित्त जल के स्पर्श का भी सर्वथा निषेध है ।

जीवन जीने के लिए अनिवार्य ऐसा पानी भी सचित्त नहीं लेते हैं, बल्कि साधु-साध्वी हमेशा अचित्त जल का ही उपयोग करते हैं ।

पानी में जीव सिद्धि

सर्वज्ञ सर्वदर्शी तारक तीर्थंकर परमात्मा ने अपने केवलज्ञान के बल से प्रत्यक्ष देखकर कहा है कि **पानी की एक बूंद में असंख्य जीव हैं ।**

जीव के गुण धर्म पानी में भी देखने को मिलते हैं ।

मनुष्य, हाथी या पशु का गर्भ प्रारंभ में प्रवाही कलल रूप में ही होता है। अंडे में रहा प्रवाही पदार्थ ही बच्चे के रूप में तैयार होता है । अतः जिस प्रकार उस प्रवाही पदार्थ में सचेतनता रही हुई है, उसी प्रकार पानी में भी सचेतनता है ।

सभी प्रवाही पदार्थों में सचेतनता है, ऐसा भी नहीं है । दूध व मूत्र प्रवाही पदार्थ होने पर भी वे जड़ हैं, परंतु उनकी उत्पत्ति भी जीव को ही आभारी है ।

बादलों के परस्पर टकराने से जल की उत्पत्ति होती है। पानी बाहर से ठंडा होता है, परंतु कभी-कभी उसमें उष्ण स्पर्श भी होता है ।

ठंडी में वातावरण में बाहर ठंडी होती है, फिर भी मनुष्य के शरीर में उष्णता हो सकती है । ठंडी में भी मुँह में से बाष्प निकलती है ।

पानी स्वयं ठंडा होने पर भी ठंडी के दिनों में कुए आदि के पानी में से बाष्प निकलती हुई दिखाई देती है । शरीर की उष्णता बिना यह भाप नहीं निकल सकती ।

पानी में भी श्वासोच्छ्वास की प्रक्रिया होती है, स्वच्छ वायु नहीं मिलने पर वह भी सड़ने लगता है, उसमें दुर्गंध पैदा हो जाती है ।

गर्म पानी में हिंसा या अहिंसा ?

जैन साधु-साध्वी जिंदगी भर के लिए कच्चे पानी, अप्काय की हिंसा का त्याग करते है । वे पीने के लिए, शरीर की अशुद्धि निवारण एवं वस्त्रों का काप निकालने में भी अचित्त जल (उबाला हुआ पानी) का ही उपयोग करते हैं ।

श्रावक अपने जीवन में अप्काय की हिंसा का सर्वथा त्याग नहीं कर सकता है, परंतु पीने के लिए सचित्त जल का त्याग कर सकता है ।

एकासने-बियासना आदि में भी सचित्त त्याग का विधान होने से उनमें भी सचित्त जल का त्याग ही होता है और अचित्त जल का ही सेवन होता है ।

प्रश्न :- पानी को उबालने में तो पानी व पानी में रहनेवाले जीवों की हिंसा होती है तो उसे उबालने की क्या जरूरत है ?

उत्तर :- जिस प्रकार पानी को उबालने में पानी के जीवों की हिंसा है, इसी प्रकार सचित्त जल को पीने में भी उन जीवों की हिंसा तो है ही ।

फर्क इतना है कि पानी को नहीं उबालने पर कच्चे पानी की सचित्त योनि में असंख्य जीवों की उत्पत्ति और उनकी मृत्यु का चक्र प्रतिसमय चलता रहता है क्योंकि उन जीवों का आयुष्य बहुत ही अल्प होता है ।

पानी को एक बार अच्छी तरह से उबाल देने पर वह आषाढ़ चातुर्मास में तीन प्रहर तक, कार्तिक चातुर्मास में चार प्रहर तक तथा फाल्गुण चातुर्मास में पाँच प्रहर तक वह पानी अचित्त ही रहता है, अर्थात् उतने समय तक उसमें अप्काय के जीवों की उत्पत्ति नहीं होती है ।

एक प्रहर अर्थात् लगभग तीन घंटे । इस प्रकार उबाला हुआ पानी लगभग 9, 12 व 15 घंटे तक अचित्त रह सकता है ।

उसी पानी का काल पूरा होने के पहले उसमें चूना मिला दिया जाय तो वह पानी पुनः 24 प्रहर अर्थात् 72 घंटे तक अचित्त ही रहता है ।

इससे सिद्ध होता है कि सचित्त जलपान की अपेक्षा अचित्त जलपान में हिंसा कम है ।

किसी भी प्राणी को जीवित खा लेने में मन के परिणाम (अध्यवसाय) कठोर होते हैं, अचित्त वस्तु के भक्षण में मन के परिणाम कोमल रहते हैं ।

इससे स्पष्ट है कि सचित्त जल व्यक्ति को कठोर और अचित्त जल व्यक्ति के हृदय को कोमल बनाता है ।

श्रावक अचित्त जलपान करता होगा तो उसे साधु-साध्वी के सुपात्र दान का भी लाभ मिल सकेगा ।

पानी छानकर पीएँ

पानी को उबालने के पहले भी उसे मोटे कपड़े से अवश्य छानना चाहिए ।

पानी को छानने से अप्काय के जीवों की हिंसा से तो नहीं बच पाते हैं, परंतु पानी में पैदा होनेवाले द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों की हिंसा से अवश्य बचा जा सकता है । अतः जो व्यक्ति पीने में गर्म पानी का उपयोग नहीं करते हैं, उन्हें भी कम-से-कम पानी पीने के पहले उसे अवश्य छानना चाहिए ।

अप्काय

अधोलोक में रही सातों पृथ्वियों के नीचे घनोदधि के रूप में जो पानी होता है, वह अप्काय स्वरूप है ।

◆ मध्यलोक में रहे असंख्य समुद्रों में रहा पानी अप्काय स्वरूप है ।

◆ नदी, तालाब, कुआ, द्रह, कुंड, झरने आदि में रहा पानी अप्काय स्वरूप है ।

◆ पांडुकवन, नंदनवन तथा वैमानिक देवलोक में रही बावड़ियों का पानी अप्काय स्वरूप है ।

जीव संख्या

सात नरकों में रहे नारकियों से असंख्य गुणा अथवा चारों निकाय के देवताओं की संख्या से असंख्य गुणा जीव पानी की एक बूंद में होते हैं ।

◆ पानी की 1 बूंद में जितने अप्काय के जीव हैं, उन जीवों का शरीर कबूतर जितना हो जाय तो 1 लाख योजन का जंबुद्वीप भी भर जाता है ।

अप्काय की विराधना

1. सूर्य के ताप से अप्काय के जीवों का नाश होता है ।

2. मिट्टी, धूल आदि में मिलने से ।

3. खारे पानी में मीठा पानी या मीठे पानी में खारे पानी का मिश्रण करने से ।

4. चूल्हे पर (अग्नि द्वारा) उबालने से

5. तृषातुर व्यक्ति द्वारा जलपान करने से

6. ठंडे पानी और गरम पानी का मिश्रण करने से ।

अग्निकाय के जीवों के भेद

इंगाल जाल मुम्मुर, उक्कासणि-कणग-विज्जुमाइआ ।
अगणि जियाणं भेया, नायव्वा निउण बुद्धीए ।।6।।

शब्दार्थ :- इंगाल=अंगार, ज्वाला रहित काष्ठ की अग्नि **जाल=**ज्वाला **मुम्मुर=**कंडे की गर्म राख में रहे अग्निकण **उक्का=**उल्कापात **असणि=**आकाश से गिरनेवाली चिनगारियाँ **कणग=**आकाश से गिरते अग्निकण **विज्जुं=**बिजली **आइआ=**इत्यादि **अगणि=**अग्नि **जियाणं=**जीवों के **भेया=**भेद **नायव्वा=**जानने चाहिए **निउणबुद्धीए=**सूक्ष्म बुद्धि से ।

भावार्थ :- अंगार, ज्वाला, कंडे की गर्म राख में रहे अग्निकण, उल्कापात, आकाश से गिरनेवाली चिनगारियाँ, आकाश से तारों के समान बरसते अग्निकण, बिजली आदि अग्निकाय जीवों के भेद सूक्ष्म बुद्धि से समझने चाहिए ।

विवेचन :- चलते-फिरते प्राणियों में जीवत्व का स्वीकार तो हर कोई करता है, परंतु स्थावर प्राणियों में जीवत्व का निर्देश तो जैन दर्शन में ही है । कई दर्शन पृथ्वी, अप्, तेज और वायु को तत्त्वरूप में मानते हैं, परंतु उनमें भी जीव हैं, यह बात सर्वज्ञ तीर्थंकर परमात्मा ने ही कही है । कई दर्शनकार व विज्ञान वनस्पति में जीव मानते हैं परंतु अग्नि में जीवत्व का स्वीकार तो सर्वज्ञ वचन की श्रद्धा बिना संभव नहीं है ।

तेज के योग से जो जीव तेजस्वी अर्थात् अग्निमय काया धारण करते हैं, उन्हें तेउकाय, तेजस्काय या अग्निकाय कहते हैं । अग्नि ही उन जीवों की काया होने से उन्हें अग्निकाय कहते हैं ।

सूक्ष्म अग्निकाय के जीव तो चर्मचक्षु से अगोचर हैं और वे 14

राजलोक में सर्वत्र हैं, परंतु बादर अग्नि, जिन्हें हम देख सकते हैं, अनुभव कर सकते हैं, उन जीवों की दया कर सकते हैं, उनके स्वरूप का वर्णन इस गाथा में किया गया है ।

1. इंगाल-अंगारा :- जिसमें धुआँ न हो, ऐसे सुलगते हुए कोयले की आग को अंगार कहते हैं । धुएँ रहित ज्वाला का समावेश अंगारे में होता है ।

2. जाल-ज्वाला :- जलती आग में जो ज्वालाएँ आग की लपटें निकलती हैं, उसे ज्वाला कहते हैं, ये ज्वालाएँ मूल से जुड़ी होती हैं और ऊपर ऊपर उठती रहती हैं ।

3. मुम्मुर-अग्नि कण :- गोबर के कंडे जल जाने के बाद ऊपर राख की परत जम जाती है, परंतु उसके नीचे अग्नि के छोटे-छोटे कण होते हैं । इसे करिष अग्नि भी कहते हैं ।

4. उक्कासणि-उल्का की आग :- आकाश में से गिरनेवाली चिनगारियाँ । कभी-कभी आकाश में अग्नि की लाइनें दिखाई देती हैं, उसे उल्का अग्नि कहते हैं । रेखायुक्त अग्निपिंड को उल्का कहते हैं ।

5. कणग-कण :- आकाश से गिरते हुए अग्नि कण ।

6. विद्युत् :- वर्षा ऋतु में कई बार बादलों की गड़गड़ाहट के साथ आकाश में बिजली चमकती है, वह बिजली भी अग्निकाय स्वरूप है ।

शरीर पर आकाशीय बिजली गिरने पर तेउकाय के जीवों की हिंसा होती है ।

इसके सिवाय सूर्यकांत मणि से पैदा होनेवाली आग, दो बाँसों के घर्षण से पैदा होनेवाली आग, पत्थर के टकराने से पैदा होने वाली आग भी तेउकाय स्वरूप है ।

अग्निकाय

बादर तेउकाय के जीव सिर्फ ढाई द्वीप में पंद्रह कर्मभूमियों में ही पैदा होते हैं ।

पाँच महाविदेह में बादर अग्निकाय जीव हमेशा होते हैं, जबकि पाँच भरत और पाँच ऐरावत में तीर्थंकरों की उत्पत्ति के समय ही ये जीव पैदा होते

हैं और शासन के विच्छेद के बाद उन जीवों की उत्पत्ति भी बंद हो जाती है ।

वर्तमान अवसर्पिणी काल में तीसरे आरे के अंत में ऋषभदेव प्रभु की उत्पत्ति के बाद भरत क्षेत्र में बादर अग्नि पैदा हुई थी ।

◆ लाइट आदि चालू करने में छट्ठ व बंद करने में अट्ठम का प्रायश्चित्त आता है । इससे ख्याल आता है कि तेउकाय की विराधना में कितना भयंकर पाप है ।

◆ **एक चावल के दाने जितनी जगह में अग्निकाय के जितने जीव होते हैं, उन जीवों का शरीर खसखस के दाने जितना हो जाय तो यह सारा जंबुद्वीप भर जाय ।**

◆ अग्निकाय की विराधना में छह काय की विराधना है ।

◆ देवता मरकर एकेन्द्रिय में पैदा होते हैं, परंतु तेउकाय और वायुकाय में पैदा नहीं होते हैं ।

◆ मनुष्य मरकर तेउकाय और वायुकाय में जा सकते हैं, परंतु तेउकाय और वायुकाय के जीव मरकर मनुष्य में पैदा नहीं होते हैं ।

अग्नि में जीव सिद्धि

सर्वज्ञ-सर्वदर्शी तारक तीर्थंकर परमात्मा का ज्ञान कितना सूक्ष्म है ! अपने ज्ञान के बल से उन्होंने अग्नि में भी जीव देखे हैं । अन्य दर्शनकारों ने व विज्ञान ने वनस्पति में जीवत्व स्वीकार किया है परंतु अग्नि में रहे सूक्ष्म जीवों का निर्देश तो जैन धर्म में ही मिलता है ।

जिस प्रकार अन्य प्राणी खुराक मिलने पर बढ़ते हैं और खुराक नहीं मिलने पर मुर्झा जाते हैं या खत्म हो जाते हैं, उसी प्रकार अग्निकाय के जीव भी ईंधन आदि की खुराक मिलने पर बढ़ते हैं और ईंधन व वायु आदि नहीं मिलने पर समाप्त हो जाते हैं ।

अग्निकाय के जीव भी वायु के अभाव में जीवित नहीं रह पाते हैं ।

जिस प्रकार मनुष्य अनुकूल पवन मिलने पर ही जीवित रहता है, पवन नहीं मिलने पर या प्रतिकूल पवन मिलने पर मर जाता है, उसी प्रकार अग्निकाय के जीव भी अनुकूल पवन मिलने पर जीवित रहते हैं और पवन नहीं मिलने पर मर जाते हैं ।

किसी पेटी में से पवन निकाल दिया जाय और उसमें दीपक रखा जाय तो वह बुझ जाता है । आवश्यकता से अधिक पवन मिलने पर भी दीपक बुझ जाता है ।

अग्नि को लकड़ी आदि की खुराक और दीपक को तैल की खुराक मिलने पर वह अग्नि बढ़ती है । अग्नि को भी अनुकूल पवन चाहिए, प्रतिकूल पवन मिलने पर वह भी बुझ जाती है ।

जिस प्रकार अन्य जीव आहार लेने के बाद उसके मल को विष्ठा आदि के रूप में विसर्जित करते हैं, उसी प्रकार आग भी अपना खुराक लेकर असार भाग को राख के रूप में विसर्जित कर देती है ।

जिस प्रकार विरोधी स्वभाववाले जीव या जड़ पदार्थ से मनुष्य को आघात लगता है अथवा उसकी मृत्यु हो जाती है, उसी प्रकार अग्नि के जीव भी पृथ्वी (रेती, धूल), पानी या कार्बनडाइ ऑक्साइड जैसे पदार्थों से मृत्यु प्राप्त करते हैं ।

पानी की तरह अग्नि भी जीव है और पानी की तरह अग्नि भी अन्य जीवों के आश्रयरूप भी है । अग्निकाय के जीव, पृथ्वीकाय से लेकर वनस्पतिकाय के जीवों को **अपने तेज से निर्जीव कर अपने स्वरूप में परिणत करते हैं ।** इसलिए अग्नि को `सर्वभक्षी' भी कहते हैं ।

अग्नि में अन्य काय के जीव भी रहते हैं । शास्त्र में अग्नियोनिक मूषकों का वर्णन आता है, जो अग्निमय स्थानों में पैदा होते हैं और उसी के बीच रहते हैं । उनके शरीर की रचना ही इस प्रकार की होती है कि वे अग्नि की उष्णता को सहन कर लेते हैं । उनकी काया पर ऐसी रोमराजि होती है, जो उन्हें अग्नि में भी रक्षण देती है ।

जिस प्रकार Fire Brigade के लोग आग की लपटों के बीच में भी अग्नि संरक्षक ड्रेस पहिनकर प्रवेश कर जाते हैं, उसी प्रकार चूहे भी अग्नि संरक्षक रोमराजि के कारण अग्नि के बीच भी आसानी से रह पाते है । इनकी रोमराजि में से ही रत्नकंबल का निर्माण होता है, जो सर्दी में ठंडी से, गर्मी में गर्मी से और वर्षा में वर्षा से बचाती है । आग में डालने पर ये रत्नकंबल शुद्ध हो जाते हैं अर्थात् इनका मैल दूर हो जाता है ।

बिजली का प्रकाश भी सजीव है

अग्नि की तरह बिजली का प्रकाश भी सजीव है । अग्नि के अस्तित्व को टिकाए रखने के लिए वायु सहायक बनता है । यद्यपि इलेक्ट्रिक बल्ब में से स्थूल वायु को बाहर निकाल दिया जाता है फिर भी उसमें सूक्ष्म वायु तो होता ही है, उस वायु की मदद से वह तार जलकर प्रकाश देता है ।

जैन साधु जब `कालग्रहण' की क्रिया करते हैं, उस समय शरीर पर बिजली का लेश भी प्रकाश गिरने नहीं देते हैं क्योंकि बिजली सचित्त है, उस बिजली का प्रकाश शरीर पर गिरने से अग्निकाय के उन जीवों की हिंसा होती है ।

सामायिक–पौषध में भी अग्नि के दीपक व बिजली के प्रकाश को शरीर पर गिरने से बचाया जाता है । वह प्रकाश शरीर पर गिरने से व्रत में अतिचार लगता है, अतः उस अतिचार से बचने के लिए बिजली के प्रकाशवाले स्थल से दूर ही रहा जाता है । अथवा उस विराधना से बचने के लिए शरीर को ऊनी कामली से ढक दिया जाता है ।

बिजली का प्रकाश शरीर पर गिरता हो तो चालू कायोत्सर्ग में भी उस स्थान से हटने का कायोत्सर्ग में आगार (अपवाद) है ।

आगम ग्रंथों में बादर अग्निकाय के जीवों का लक्षण बताते हुए कहा है कि जिसमें दाह, प्रकाश व उष्णता हो, वह अग्निकाय है ।

आगमग्रंथों में कहा है कि सुलगता हुआ अंगारा, राख से ढका हुआ अंगारा, धुएँ वाली आग, ज्योति, प्रकाश, उल्का, बिजली, अग्निकण, ईंट की भट्टी की आग, कुंभकार की भट्टी की आग, अग्नि से लालबूंद हुआ लोहे का गोला, चूल्हे की आग, लकड़ी की आग, कंडे की आग, सूर्यकांतमणि से पैदा हुई आग, वृक्ष की डालियों के घर्षण से पैदा हुई आग, दीपक की शिखा, ज्योति, आकाशीय अग्नि आदि सभी अग्निकाय के प्रकार हैं ।

इलेक्ट्रिक बल्ब में जिस मार्ग से बिजली अंदर जाकर टंगस्टन के तार को जलाती है, उस मार्ग से वायु भी अंदर जा सकती है ।

बादर पर्याप्त अग्निकाय की अपेक्षा बादर पर्याप्त वायुकाय की अवगाहना असंख्य गुणी कम है अतः बल्ब में वायुकाय का प्रवेश आसानी से हो सकता है ।

जहाँ अग्नि होती है वहाँ वायु अवश्य होता है अतः बल्ब में प्रकाश होने से वहाँ भी वायु है ही ।

बल्ब में रहे वायु ऑक्सीजन की तरह ही जलने में सहायक होता है ।

वैज्ञानिकों ने भी शोध करके सिद्ध किया है कि आकाशीय बिजली और इलेक्ट्रिक तार wire में बहनेवाली कृत्रिम बिजली एक ही है ।

आकाशीय बिजली को भी बिजली के तारों द्वारा वहन कर सकते हैं । इसी कारण ऊँचे मंदिर व बड़ी बिल्डिंग की सुरक्षा के लिए बिजली को ग्रहणकर उसे अर्थिंग करने की व्यवस्था की जाती है ।

बड़े-बड़े बिजलीघरों में संघर्षण से भी बिजली पैदा की जाती है, वह बिजली भी सचित्त होती है ।

जिस प्रकार राख से ढकी बिजली दिखती नहीं है, परंतु पेट्रोल डालने पर तुरंत भड़कती है, उसी प्रकार बिजली के तार में भी अग्नि होती है जो शोर्ट सर्किट, लीकेज व ओजोन आदि वायु की उपस्थिति में जलती हुई दिखाई देती है ।

इलेक्ट्रिक बिजली में दाहकता व उष्णता भी होती है, इसी कारण वायर Wire भी गर्म हो जाता है ।

आगम ग्रंथों में कहा है कि तेजोलेश्या का जो प्रकाश होता है, वह बिजली जैसा कहा गया है, परंतु वह सचित्त नहीं बल्कि अचित्त होता है ।

तेउकाय के जीव त्रस व स्थावर जीवों के मृत कलेवर में भी पैदा हो सकते हैं ।

गैस, लकड़ी, रुई, कागज, प्लास्टिक, पेट्रोल, तेल, घी, पत्थर, ईंट, घासलेट, घास, लोहा आदि पदार्थों में भी अग्निकाय जीव पैदा होते हैं और उन पदार्थों को अपने शरीर रूप में परिणत कर देते हैं ।

तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है कि तेउकाय जीव और उनका प्रकाश एक ही वस्तु है । इस कारण बल्ब के बाहर फैला हुआ प्रकाश भी तेउकाय ही है ।

बिजली भी सचित्त ही है, क्योंकि पकाना-प्रकाश देना आदि जो गुण-धर्म अग्नि के हैं, वे ही गुणधर्म बिजली के भी हैं ।

शास्त्र में शरीर की गर्मी, खद्योत का प्रकाश, जठराग्नि, बुखार की गर्मी, तेजोलेश्या का प्रकाश, सूर्य का प्रकाश, नरक की अग्नि, चंद्र प्रकाश

तथा मणि के प्रकाश को तेउकाय में नहीं गिना गया है, शेष सभी प्रकाश तेउकाय रुप है ।

◆ रत्नों में जो प्रकाश होता है वह रत्न रूप पृथ्वीकाय जीवों के उद्योत नामकर्म के उदय के कारण होता है । अतः उसमें भी जो प्रकाश है, वह जीव के कारण ही है, इसी प्रकार बिजली में भी जो प्रकाश होता है, वह जीव प्रयोग से ही होता है ।

◆ सूर्य प्रकाश निर्जीव होता है, परंतु उसका उत्पत्ति स्थान जो सूर्य का विमान है, वह पृथ्वीकाय का ही है, आतप नाम कर्म के उदय के कारण उसका उष्ण प्रकाश होता है, वह भी जीव प्रयोग से ही है ।

◆ आकाश में बिजली चमकती हो और उसका प्रकाश शरीर पर पड़े तो भी तेउकाय की विराधना होती है ।

◆ अग्नि की उत्पत्ति में पृथ्वीकाय आदि अनेक जीवों का घात रहा हुआ है, अतः उससे भयंकर पापकर्म का बंध होता है । अग्नि दीर्घलोक शस्त्र है, जो सभी जीव समूह को जलाकर भस्मीभूत कर देता है ।

◆ इलेक्ट्रिसिटी के उत्पादन में छ काय की भयंकर विराधना है । बड़ी नदियों पर बाँध बनाकर उसके तीव्र प्रवाह से हाइड्रो इलेक्ट्रिक पैदा की जाती है । टरबाइन के घूमते पंखों से लाखों जलचर प्राणी खत्म हो जाते हैं ।

थर्मल इलेक्ट्रिक पैदा करने के लिए भी लाखों टन कोयले आदि को जलाया जाता है, अतः उसमें भी त्रस आदि जीवों की विराधना रही हुई है ।

वायुकाय जीवों के भेद

उब्भामग उक्कलिया, मंडलि मह सुद्ध गुंजवाया य ।
घण तणु वायाइआ, भेया खलु वाउकायस्स ।।7।।

शब्दार्थ :- उब्भामग=ऊँचे उड़नेवाला वायु **उक्कलिया=**नीचे बहनेवाला वायु **मंडली=**गोलाकार बहनेवाला वायु **मह=**आंधी **सुद्ध=**मंद मंद गति से बहनेवाला वायु **गुंजवाया=**गुंजन करता हुआ वायु **य=**तथा **घण=**गाढ़ा वायु **तणु=**तनवात-पतला वायु **वाय=**वायु **आइआ=**इत्यादि **खलु=**निश्चय से **वाउकायस्स=**वायुकाय के **भेया=**भेद हैं ।

जीव के भेद पाँच स्थावर

पृथ्वीकाय

अप्काय

तेउकाय

वायुकाय

जीव के भेद

प्रत्येक वनस्पति के २ भेद

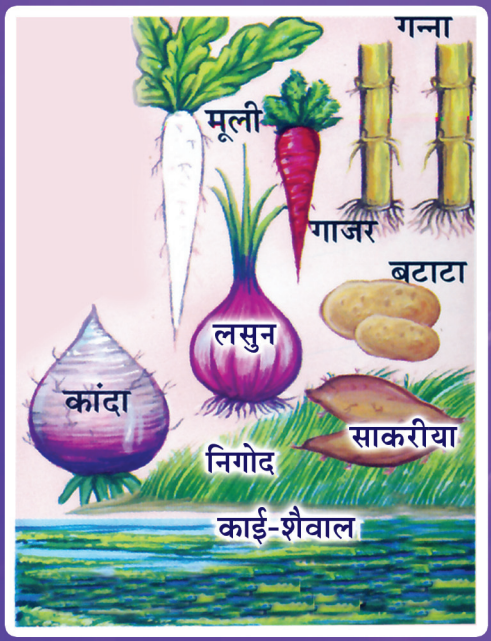

साधारण वनस्पति के ४ भेद

बेइन्द्रिय

तेइन्द्रिय

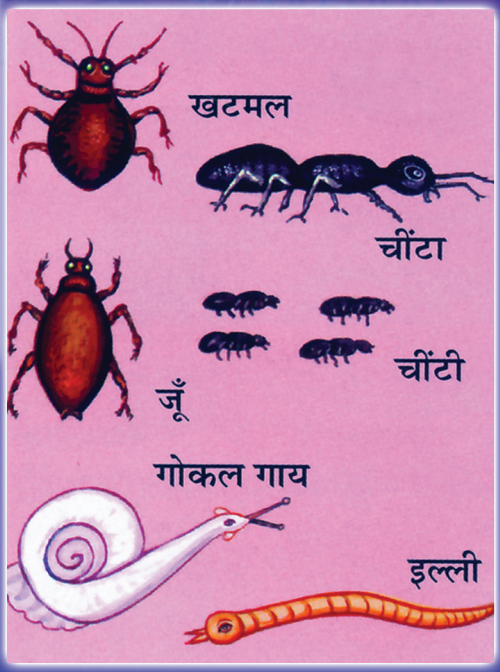

चउरेन्द्रिय

पंचेन्द्रिय तिर्यंच

जलचर

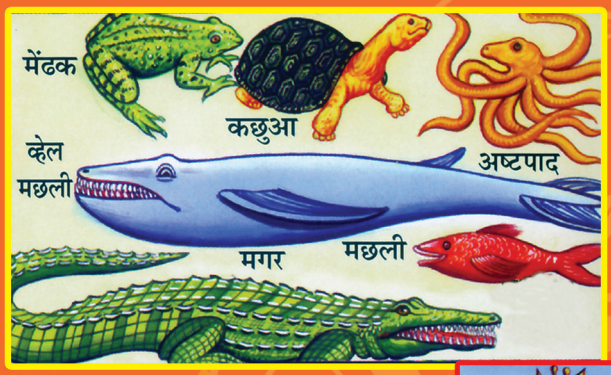

स्थलचर चतुष्पद

उरपरिसर्प

भुजपरिसर्प

खेचर

पंचेन्द्रिय मनुष्य

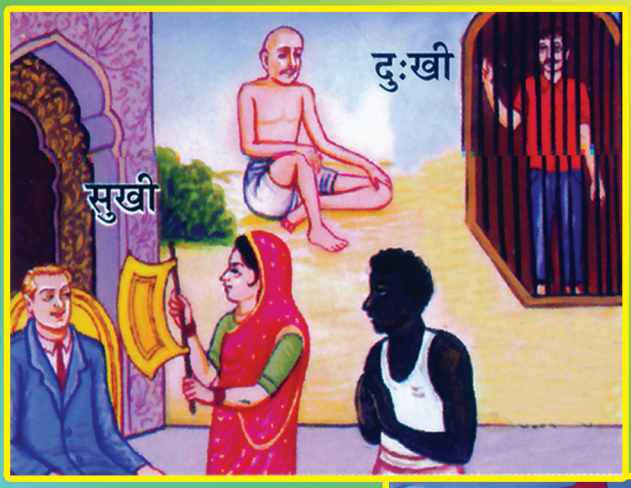

देव

नारकी

देव जाति के भेद-उपभेद

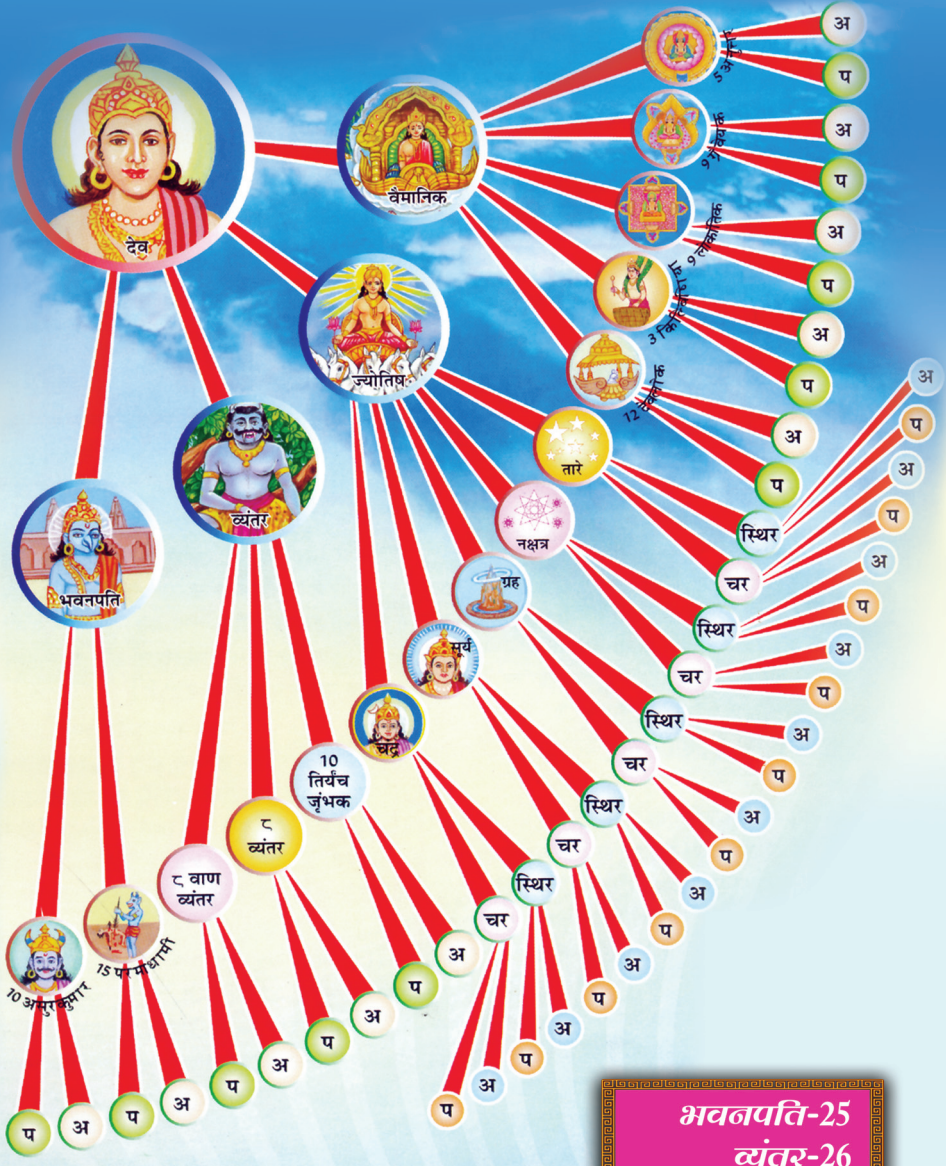

भवनपति	25
व्यंतर	26
ज्योतिषी	10
वैमानिक	38
योग	99

99 पर्याप्त+99 अपर्याप्त=198

मनुष्यों के 303 भेद

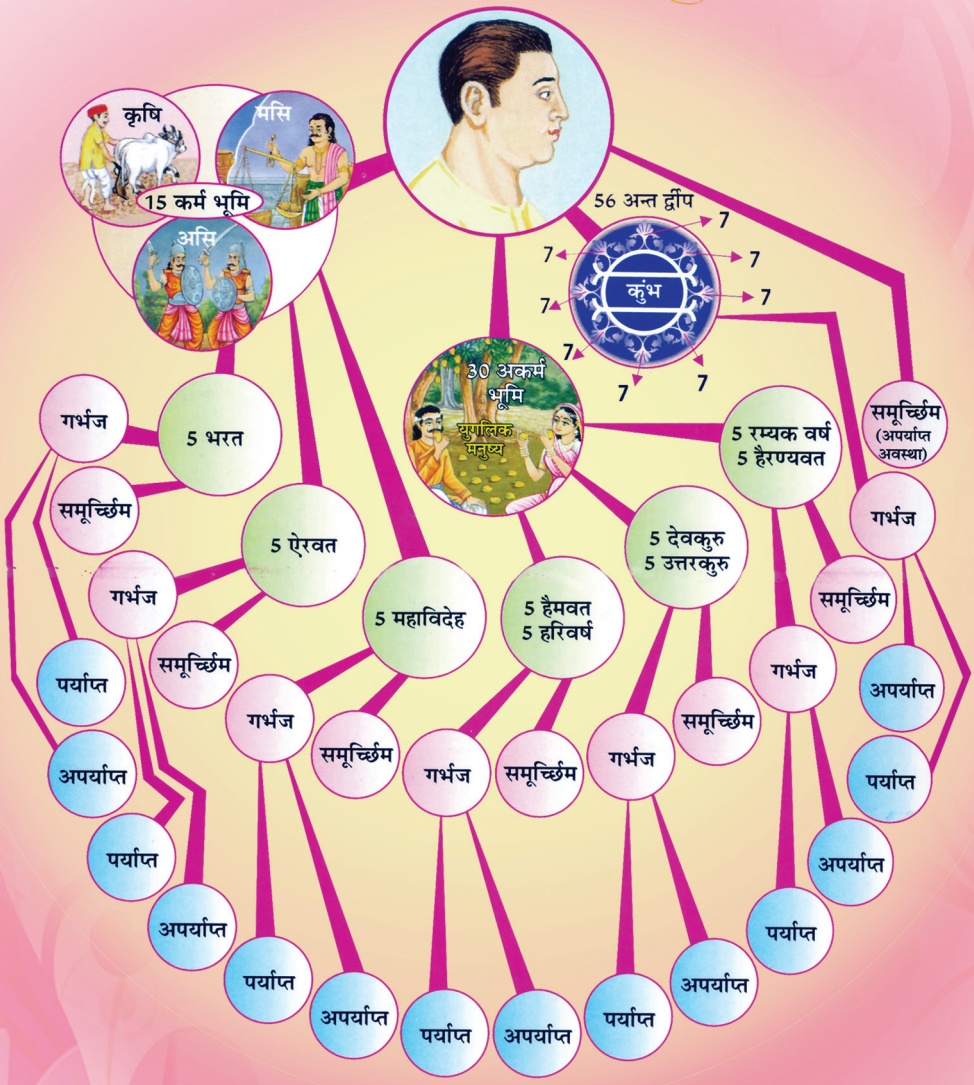

15 कर्मभूमि के मनुष्य
30 अकर्म भूमि के मनुष्य
56 अन्तर्द्वीप के मनुष्य
101

भेद-101 गर्भज पर्याप्ता मनुष्य
भेद-101 गर्भज अपर्याप्ता मनुष्य
भेद-101 समूर्च्छिम अपर्याप्ता मनुष्य
कुल-303 मनुष्य के भेद

भावार्थ :- ऊँचे बहनेवाला, नीचे बहनेवाला, गोलाकार बहनेवाला, आंधी, मंद बहनेवाला, गुंजार करता हुआ वायु, घनवात और तनवात आदि वायुकाय जीवों के भेद हैं ।

वायु में जीव सिद्धि

जीव को छोड़कर अन्य किसी पदार्थ में स्वतः गति करने की शक्ति नहीं है, क्योंकि मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सचेतन अवस्था में ही गति करते हैं ।

वायु भी बिना किसी की प्रेरणा से इधर-उधर स्वतः गति करती है, उसमें भी जीव है, चेतना है ।

वायु का अस्तित्व आँखों द्वारा देखा नहीं जा सकता है, परंतु स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा उसका अनुभव जरूर किया जा सकता है । वायुकाय के भी अनेक प्रकार हैं ।

1. उद्भ्रामक वायु :- जमीन से ऊपर आकाश की ओर घूमने के स्वभाववाले वायु को उद्भ्रामक वायु कहते हैं । यह वायु अपनी ताकत से अन्य व्यक्ति या वस्तुओं को भी ऊपर ले जाता है, इसे संवर्तक वायु भी कहते हैं ।

तारक तीर्थंकर परमात्मा के जन्म समय दिक्कुमारिकाएँ आकर इसी संवर्तक वायु द्वारा भूमि शुद्धि करती हैं । तारक परमात्मा की धर्मदेशना के लिए समवसरण की रचना के पूर्व वायुकुमार देवता आकर संवर्तक वायु द्वारा ही एक योजन की भूमि को शुद्ध करते हैं ।

2. उत्कलिक वायु :- जो वायु ऊपर से नीचे की ओर आता है, उसे उत्कलिक वायु कहते हैं । इस वायु के कारण भूमि पर पडी वस्तुएँ इधर-उधर बिखर जाती हैं । रेगिस्तान में इसी वायु के द्वारा कहीं रेत के टीले हो जाते हैं तो कहीं टीले भी मैदान में बदल जाते हैं ।

3. मंडली वायु :- चक्र की तरह गोल-गोल घूमने के स्वभाववाली वायु को मंडली वायु कहते हैं, चक्रवात पवन के जाल में फँसा जहाज भी गोल-गोल घूमकर दूर चला जाता है ।

4. महावायु :- भयंकर आंधी और तूफान के रुप में जब पवन बहता है तो उसे महावायु कहते हैं । अथवा

महवायु अर्थात् मुख में से निकलनेवाली वायु को मुखवायु कहते हैं ।

5. शुद्ध वायु :- मंद-मंद गति से जब ठंडा पवन बहता है तो उसे शुद्ध वायु कहते हैं । जंगल में बाँस के झाड़ की पोलाण में से गुंजन करते हुए वायु को शुद्ध वायु कहते हैं ।

5. घनवात :- देवताओं के विमान और नरक पृथ्वियाँ जिसके आधार पर रही हुई हैं, उसमें घनवात Solid Airbodies भी एक है । इस वायु में घनता अत्यधिक होती है ।

6. तनवात :- देवविमान और नारक पृथ्वियों के आधार के लिए एक तनवात भी होती है । इस वायु में घनता कम होती है ।

कम क्षेत्र में अधिक अणुस्कंध रहते हों तो उसमें घनता अधिक होती है और अधिक क्षेत्र में कम अणुस्कंध रहते हों तो घनता कम होती है ।

देवविमान व नरक पृथ्वियों के नीचे यह घनवात और तनवात असंख्य योजन के मोटे पिंड के रूप में रहती है । इन दो वायु और घनोदधि के आधार पर नरक-पृथ्वियाँ और देव विमान टिके हुए हैं ।

वायुकाय के जीव चर्म चक्षु से अदृश्य होते हैं, उनका शरीर अत्यंत ही सूक्ष्म होता है । अपनी स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा ही हमें वायुकाय के अस्तित्व का आभास होता है ।

• एक नीम के पत्ते प्रमाण वायु में जितने जीव होते है, वे सिर पर रही लिख जितने हो जाय, तो यह सारा जंबुद्वीप भर जाय ।

अन्य जीवों के अस्तित्व और स्वस्थता में वायुकाय के जीवों की खूब सहायता है ।

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वनस्पतिकाय और अन्य त्रस जीव वायु की उपस्थिति में ही स्वस्थता का अनुभव करते हैं ।

केमिकल के प्रदूषण से नदियों व समुद्र के जल में वायु का प्रमाण घट जाता है, जिसके फलस्वरूप अनेक जलचर प्राणी मौत के मुख में चले जाते हैं ।

कई जहरीली वायु मनुष्य की मौत का भी कारण बनती हैं । जर्मनी के एडॉल्फ हिटलर ने लाखों यहूदियों को गैस चेंबर में बंदकर मौत के घाट उतार दिया था ।

कई वायु ईंधन का भी काम करती हैं । आजकल घरों में रसोई बनाने के लिए L.P.G. तैलीय Gas का ही उपयोग होता है ।

कुछ वायु से आग बुझ जाती है, तैलीय आग को पानी से बुझा नहीं सकते हैं, उसके लिए विरोधी गुणधर्म वाली वायु का ही उपयोग किया जाता है ।

कुछ स्थानों को छोड़कर चौदह राजलोक में सदैव वायु का अस्तित्व होता है ।

वायुकाय में स्वाभाविक गति है, इस कारण उनका समावेश गति त्रस जीवों में भी होता है ।

वायुकाय के जीव अधिकतम 3000 वर्ष तक जीवित रह सकते हैं, यह उनका उत्कृष्ट आयुष्य है ।

वायुकाय जीवों की विराधना

1. पंखा चलाने से वायुकाय के जीव मरते हैं ।

2. पूर्व दिशा का पवन पश्चिम दिशा के पवन से और पश्चिम दिशा का पवन पूर्व दिशा के पवन से टकराने से वायुकाय के जीव मरते हैं ।

3. नाक व मुख से श्वास लेने से वायुकाय के जीव मरते हैं ।

4. मुहपत्ति के उपयोग बिना बोलने से भी वायुकाय के जीव मरते हैं ।

5. साँप भी वायु का भक्षण करता है, जिससे वायुकाय के जीव मरते हैं ।

वायुकाय के जीवों की रक्षा के लिए सर्वप्रथम तो वायुकाय की उत्पत्ति में निमित्तभूत नहीं बनना चाहिए ।

इलेक्ट्रिक पंखा, टेबल फेन, कूलर, हीटर, ए.सी. आदि का उपयोग करने से वायुकाय के जीवों का नाश होता है ।

हाथ-पंखा, वस्त्र-पंखे आदि से हवा खाने से वायुकाय के असंख्य जीवों की हिंसा होती है ।

सायकल, मोटर, टेंपो, टैक्सी, स्कूटर, बस, ट्रक, रेलगाड़ी, जहाज, वायुयान आदि चलाने से भी वायुकाय के जीवों की हिंसा होती है ।

गमनागमन करने से, दौड़ने से, व्यायाम, पर्वतारोहण, स्वीमिंग, पतंग उड़ाने आदि से भी वायुकाय के असंख्य जीवों की विराधना होती है ।

आग लगाने, ऊपर की मंजिल से कचरा-पानी आदि फेंकने से, लिफ्ट में चढ़ने-उतरने से, झूले में झूलने से, रोप वे (Rope-way) में बैठने से, ऊपर से कूदने से वायुकाय के जीवों की विराधना होती है ।

गर्म चाय को ठंडी करने के लिए फूंक मारने से, गर्म जल को ठंडा करने से, स्टॉव, गैस, चूल्हा, पैट्रोमेक्स, मोमबत्ती, दीपक आदि जलाने से भी वायुकाय के जीवों की विराधना होती है । बहुत पवनवाले स्थान में कपड़े

सुखाने से, कपड़े को झाड़ने से, झाड़ू निकालने से भी वायुकाय के जीवों की विराधना होती है । ट्यूब, तकिये आदि में जो हवा भरी जाती है, वह भी वायुकाय ही है, जो अमुक समय बाद निर्जीव हो जाती है ।

वायुकाय के जीवों की रक्षा के लिए अपने हाथ-पंखा, वस्त्र आदि से हवा नहीं खानी चाहिए । वायुकाय की हिंसा से बचने के लिए A.C., कूलर, पंखे आदि का उपयोग नहीं करना चाहिए ।

वस्त्र आदि की प्रतिलेखना करते समय भी जयणाधर्म का पालन करना चाहिए ।

वनस्पतिकाय के भेद-प्रभेद

साहारण पत्तेआ, वणस्सइ-जीवा दुहा सुए भणिया ।
जेसिमणंताणं तणू, एगा साहारणा ते उ ।।8।।
कंदा अंकुर-किसलय, पणगा सेवाल भूमिफोडा य ।
अल्लयतिय गज्जर मोत्थ, वत्थूला थेग पल्लंका ।।9।।
कोमल फलं च सव्वं, गूढ सिराइं सिणाइ पत्ताइं ।
थोहरि कुंआरी गुग्गुलि, गलोय पमुहाइ छिन्नरुहा ।।10।।
इच्चाइणो अणेगे, हवंति भेया अणंतकायाणं ।
तेसिं परिजाणणत्थं, लक्खणमेअं सुए भणियं ।।11।।

शब्दार्थ :- साहारण=साधारण **पत्तेया=**प्रत्येक **वणस्सइजीवा=** वनस्पतिजीव **दुहा=**दो प्रकार के **सुए=**आगम शास्त्रों में **भणिया=**कहे गए हैं **जेसिमणंताणं=**जिन अनंत जीवों का **एगा=**एक, **तणू=**शरीर **साहारणा=**साधारण **ते उ=**वे (गाथा-8)

कंदा=जमीनकंद **अंकुर=**अंकुरा **किसलय=**कूंपल, कोमल पत्ते **पणगा=**पंचरंगी फूलण **सेवाल=**काई **भूमिफोडा=**भूमि स्फोट **य=**तथा **अल्लयतिय=**हरे तीन **गज्जर=**गाजर **मोत्थ=**नागर मोत्था **वत्थुला=**बथुए की भाजी **थेग=**एक प्रकार का कंद **पल्लंका=**पालक की भाजी (गाथा-9)

कोमल फलं=कोमलफल **च=**और **सव्वं=**सभी **थोहरि=**थोहर **कुँआरि=**घी कुंआर **गुग्गुली=**गुग्गुल **गूढ सिराइं=**गुप्त नसोंवाले **सिणाइ पत्ताइं=**सन के पत्ते **गलोय पमुहाइ=**गिलोय आदि **छिन्नरुहा=**काटने पर उगनेवाले (गाथा 10)

इच्चाइणो=इत्यादि **अणेगे=**अनेक **हवंति=**होते हैं **भेया=**भेद **अणंतकायाणं=**अनंतकाय के **तेसिं=**उनको **परिजाणणत्थं=**जानने के लिए **लक्खण=**लक्षण **एअं=**ये **सुए भणियं=**शास्त्र में कहे हैं (गाथा 11)

भावार्थ :- शास्त्रों में वनस्पतिकाय के मुख्य दो भेद बतलाए हैं साधारण वनस्पतिकाय और प्रत्येक वनस्पतिकाय । जिन अनंत जीवों का एक शरीर हो, वे साधारण वनस्पतिकाय कहलाते हैं । ।।8।।

आलू आदि जमीनकंद, अंकुर, कूंपल, पाँचवर्ण की फूलण (जो बासी अन्न में पैदा होती है) शैवाल, वर्षा में पैदा होनेवाली छत्राकार वनस्पति, (अदरख, हल्दी व कच्चूरक) आर्द्रकत्रिक, गाजर, नागरमोथा, बथुआ, थेग, पालक की भाजी, सभी प्रकार के कोमलफल, गुप्त नसों वाले सन आदि के पत्ते, काटने पर बो देने से उगने वाली थोहर, घीकुंआर, गुग्गुल तथा गिलोय आदि वनस्पतियाँ (साधारण वनस्पति अर्थात् अनंतकाय) हैं । (9-10)

इत्यादि अनंतकाय जीवों के अनेक भेद हैं । उनको अच्छी तरह से जानने के लिए शास्त्र में उनके लक्षण बतलाए हैं । (11)

विवेचन :- पृथ्वीकाय आदि जीवों की अपेक्षा वनस्पतिकाय जीवों में बहुत विचित्रताएँ देखी जाती है । जगत् में रहे सभी जीवों की अपेक्षा मात्र वनस्पतिकाय में ही प्रत्येक और साधारण भेद है ।

प्रस्तुत गाथाओं में साधारण वनस्पतिकाय का लक्षण बताकर उसके भेद बताए है ।

साधारण वनस्पति :- जहाँ अनंत जीवों का एक शरीर हो, वे साधारण वनस्पति काय कहलाते है ।

गाथा में दिये–आलू आदि कंदमूल जगत् में प्रसिद्ध है ।

विशेष में यहाँ अद्रक त्रिक के रुप में हल्दी, अद्रक और कच्चूरक इन तीनों को हरे रूप में अनंतकाय कहा है, शेष में इस प्रकार का विशेषण नहीं दिया है ।

सामान्य से सभी वनस्पतियाँ हरी होने पर सचित्त और सुखने के बाद अचित्त मानी जाती है । अद्रक आदि तीन के हरे रहने तक अनंतकाय कहा है, क्योंकि इन तीनों को सुखाने के बाद औषध के रुप में उपयोग किया जाता है जबकि अन्य अनंतकाय वनस्पतियों को सुखाने के बाद भी उपयोग करने का निषेध है ।

साधारण व प्रत्येक वनस्पतिकाय के लक्षण

गूढसिर संधि पव्वं, सम-भंगमहीरगं च छिन्नरुहं ।
साहारणं सरीरं, तव्विवरीयं च पत्तेयं ।।12।।

एग सरीरे एगो, जीवो जेसिं तु ते य पत्तेया ।
फल-फूल-छल्लि-कट्ठा, मूलग पत्ताणि बीयाणि ।।13।।

शब्दार्थ :- गूढ=गुप्त हो **सिर=**नसें **संधि=**जोड़ **पव्वं=**गाँठें **समभंगं=**तोड़ने पर समान टुकड़े हों **अहीरगं=**तंतु न हों **छिन्नरुहं=**काटने पर भी उगे **साहारणं=**साधारण वनस्पतिकाय **सरीरं=**शरीर **च=**और **तव्विवरीयं=**उससे विपरीत **पत्तेयं=**प्रत्येक वनस्पतिकाय ।। (गाथा 12)

एग सरीरे=एक शरीर में **एगो=**एक **जीवो=**जीव **जेसिं=**जिनके **तु ते=**वे तो **पत्तेया=**प्रत्येक वनस्पति **फल=**फल **फूल=**पुष्प **छल्लि=**छाल **कट्ठा=**लकड़ी **मूलग=**जड़ **पत्ताणि=**पत्ते **बीयाणि=**बीज (गाथा 13)

भावार्थ :- जिनकी नसें, संधिस्थल व गाँठें गुप्त हों, दिखाई न दें । जिनको तोड़ने पर समान टुकड़े होते हों, जो काटने पर भी उगते हैं, वे सभी साधारण वनस्पतिकाय के शरीर होते हैं और इनसे विपरीत प्रत्येक वनस्पतिकाय है ।।12।।

जिनके एक शरीर में एक जीव हो, वे प्रत्येक वनस्पतिकाय हैं । उसके 7 भेद हैं-फल, फूल, छाल, काष्ठ, मूल, पत्ते और बीज ।।13।।

विवेचन :- जैन आगम ग्रंथों में वनस्पति-स्वरूप जीवों का जितना सूक्ष्म और तलस्पर्शी वर्णन है, उतना अन्य किसी भी धर्म में देखने को नहीं मिलता है । वैज्ञानिक जगदीशचंद्र बोस ने वर्षों तक प्रयोग करके वनस्पति में रहे जीवत्व को सिद्ध किया, परंतु जैन आगमों में तो वनस्पति प्राणी सृष्टि का बहुत ही विशद वर्णन देखने को मिलता है ।

वनस्पति रूप जीवों को मात्र एक ही स्पर्शनेन्द्रिय है, उसी इन्द्रिय से वे आहार ग्रहण करती हैं, अपने सुख-दुःख की अनुभूति भी उसी इन्द्रिय से करती हैं ।

अनुकूल आहार, खाद, पानी, हवा आदि मिलने पर वनस्पति विकसित होती है और विपरीत आहार या जल न मिलने पर वह सूख भी जाती है ।

वनस्पति के दो भेद :- साधारण और प्रत्येक

बाह्य दृष्टि से आलू और आम दोनों वनस्पति रूप दिखाई देते हैं, परंतु उनके भीतर रही जीव सृष्टि की संख्या में बहुत बड़ा अंतर है । आलू के एक फल में....अरे ! उसके सुई के अग्र भाग जितने भाग में भी अनंत जीव हैं ।

पृथ्वीकाय के जीव असंख्य हैं ।

अप्काय के जीव असंख्य हैं ।

तेउकाय के जीव असंख्य हैं ।

वायुकाय के जीव असंख्य हैं ।

प्रत्येक वनस्पतिकाय के जीव असंख्य हैं ।

देवलोक में रहे देवता असंख्य हैं ।

नरक में रहे नारक जीव असंख्य हैं ।

परंतु साधारण वनस्पतिकाय के जीव अनंत हैं । साधारण वनस्पतिकाय के जीवों को छोड़ विश्व की समस्त प्राणी सृष्टि का जोड़ Total किया जाय तो वे सभी जीव असंख्य Uncountable ही होते हैं, जब कि साधारण वनस्पति के जीव अनंत Infinite हैं ।

साधारण वनस्पतिकाय के जीव भी दो प्रकार के हैं दृश्यमान और अदृश्य ।

जमीनकंद आदि साधारण वनस्पतिकाय के जीवों को हम अपनी आँखों से देख सकते हैं, उनका अनुभव कर सकते हैं और अभयदान देकर उन जीवों का रक्षण भी कर सकते हैं, जबकि चौदह राजलोक में असंख्य निगोद के गोले हैं, जिन्हें हम अपनी चर्म चक्षुओं द्वारा देख नहीं सकते हैं अथवा उनका अन्य इन्द्रियों द्वारा भी अनुभव नहीं कर सकते हैं । उनका हम छेदन-भेदन भी नहीं कर सकते हैं ।

जो दृश्यमान निगोद के जीव हैं, उन जीवों के रक्षण के लिए प्रयत्न करना हमारा कर्त्तव्य है, इसीलिए उन जीवों के स्वरूप को जानने के लिए हमें अवश्य ही योग्य पुरुषार्थ करना चाहिए ।

वनस्पति में जीव सिद्धि

जिस प्रकार मनुष्य अपनी इन्द्रियों के द्वारा पदार्थ का बोध करता है, उसी प्रकार वनस्पति के जीव भी अपनी एक ही इन्द्रिय के द्वारा अति अल्प प्रमाण में पाँच इन्द्रियों के विषय का बोध करते हैं । यद्यपि वनस्पति में बाह्य दृष्टि से एक ही इन्द्रिय होती है, फिर भी भाव से तो उसमें भी पाँच इन्द्रियाँ हैं ।

यद्यपि विकास की दृष्टि से वनस्पति के जीवों का विकास अति अल्प प्रमाण में हुआ होने से वह अनुभव बहुत ही मंद होता है ।

वनस्पतिकाय के जीव पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और अन्य त्रस जीवों को अपने स्वयं के योग्य आहार के रूप में जानकर उसे ग्रहण कर अपनी काया के रूप में बदल देते हैं ।

◆ जिस प्रकार अनुकूल खुराक मिलने से अन्य जीवों का शरीर बढ़ता है उसी प्रकार वनस्पति को भी अनुकूल खुराक मिलने से वह बढ़ती है और न मिलने से मुर्झा जाती है ।

◆ जिस प्रकार मनुष्य में बाल, युवा व वृद्धावस्था होती है, उसी प्रकार वनस्पति में भी ये अवस्थाएँ होती हैं ।

◆ वनस्पति में भी राग-प्रेम-हर्ष-शोक, लोभ, भय, मैथुन, क्रोध, मान, माया आदि भाव दिखाई देते हैं ।

◆ गत जन्मों के संस्कारों के कारण वनस्पति में भी कई संस्कार दिखाई देते हैं ।

जिस प्रकार बया पक्षी घोसला बनाने में कुशल होता है; तोता, कोयल व मैना मधुर ध्वनि करते हैं, भौंरा बाँस में छेद कर देता है; उसी प्रकार वनस्पति में भी कई आश्चर्यकारक घटनाएँ देखने को मिलती हैं ।

1. कंदल व कुंडल वनस्पति मेघ की गर्जनाओं को सुनकर पल्लवित होती हैं ।

2. कई लताएँ दीवार व स्तंभ को देख ऊपर चढ़ जाती हैं ।

3. कुछ वनस्पतियाँ धूप आदि की सुगंध से वृद्धि पाती हैं ।

4. गन्ने जैसी वनस्पतियाँ भूमि में से मीठा रस चूस लेती हैं ।

5. कुछ ऐसी भी वनस्पतियाँ हैं, जिनका स्पर्श करने पर वे संकुचित हो जाती हैं अर्थात् किसी के स्पर्श से प्रभावित होती हैं । जैसे छुईमुई ।

वनस्पति में भी निद्रा व जागृत अवस्था देखी जाती है । जैसे सूर्य विकासी कमल सूर्य के उदय होने पर खिलता है और सूर्य के अस्त होने पर मुर्झा जाता है । कुछ कमल चंद्र के उदय के साथ खिलते हैं और चंद्र के अस्त होने पर मुर्झा जाते हैं ।

◆ बबूल वृक्ष के पत्ते ज्यों-ज्यों दिन खिलता है, त्यों-त्यों ताजे रहते हैं और अंधेरा होने पर संकुचित हो जाते हैं ।

◆ **कई वनस्पतियों में मनुष्य की तरह राग भाव भी दिखाई देता है । अशोक, बकुल आदि वृक्षों पर नूपुर पहनी हुई स्त्री पाद प्रहार करती है, तब वे वृक्ष खिलते हैं ।**

◆ वनस्पति पर काल का भी प्रभाव होता है । कई वनस्पतियाँ सुकाल के वातावरण को पाकर खिलती हैं तो कई वनस्पतियाँ दुष्काल में खिलती हैं ।

◆ **कई वनस्पतियों में शब्द ध्वनि सुनाई देती है, कोकनद का वृक्ष हुंकार की आवाज करता है ।**

◆ कई वनस्पतियों में रुदन क्रिया भी दिखाई देती है । रुदन्ती वनस्पति बारबार आँसुओं की तरह पानी की बूंदें गिराती है ।

◆ **कई वनस्पतियों में परिग्रह संज्ञा के संस्कार भी दिखाई देते हैं । बिल्व व पलाश नामक वनस्पति जमीन में धन गड़ा हो तो उस पर अपनी जड़ें व पत्ते फैला देती हैं ।**

◆ कई लताएँ अपने फलों को पत्तों के नीचे ढकने का प्रयास करती हैं, जो माया का प्रतीक है ।

◆ कई वनस्पति में भय-अभय के भी भाव दिखाई देते हैं ।

रशियन वैज्ञानिक ने गेलवेनो-मीटर Galvanometer नाम का यंत्र बनाया है, इस यंत्र के माध्यम से वनस्पति में रही भय-प्रेम आदि की संवेदनाओं को जाना जा सकता है ।

एक बार उस यंत्र को किसी पौधे की मुख्य शिराओं के साथ जोड़ा गया । फिर उस पौधे के पास अलग-अलग भावों को अभिव्यक्त किया गया **'तुम नीरोग रहो, स्वस्थ रहो, दीर्घायु बनो,** आदि-आदि जब शुभ भाव व्यक्त किए गए, तब उस ग्राफ के ऊपर आनंद के आंदोलन थे और उसी

पौधे के पास **'इसे काट डालो, चीर डालो, उखेड़ दो'** आदि भाव व्यक्त किए गए तब वे कंपन अनियमित होने लगे । मानों वह वनस्पति अपने प्रतिकूल भावों को अभिव्यक्त कर रही थी ।

उसी वृक्ष को जल का सिंचन किया जाय तो उस पर शुभ भावों की अभिव्यक्ति और उसी को जलाने का प्रयास किया जाय तो भय के भाव दिखाई दिए ।

इस प्रकार वनस्पति में भी हर्ष-शोक, भय आदि की अनुभूतियाँ दिखाई देती हैं ।

◆ इक्षु रस, तीर्थों के जल आदि के सिंचन से कई वृक्ष खूब खिलते हैं तथा कचरा, अशुचि पदार्थ आदि से वृक्ष बीमार हो जाते हैं ।

◆ वनस्पति में मैथुन संज्ञा भी होती है । कई नर वृक्ष, नर पराग कणों को विसर्जित करते हैं, जिन्हें मादावृक्ष ग्रहण करते हैं ।

◆ पानी के प्रवाह पर तैरते नर पराग कणों को ग्रहण करने के लिए मादा वनस्पति के पुष्प पानी के ऊपर आते हैं । पपीते आदि वृक्षों में नर-मादा वृक्ष होते हैं ।

◆ कई वनस्पतियाँ नवयौवना के मुख के तांबूल रस को थूकने पर विकसित होती हैं ।

◆ मनुष्य व पशु-पक्षी की तरह वनस्पति में भी कई रोग लागू पड़ते हैं । कई प्राचीन ग्रंथों में उन रोगों की चिकित्सा के उपाय बतलाए हैं ।

शस्त्र के प्रहार व विषभक्षण आदि से मनुष्य की अकालमृत्यु भी होती है, उसी प्रकार शस्त्र आदि लगने से वनस्पति की भी अकालमृत्यु होती है ।

वनस्पति में ओघ संज्ञा भी होती है, इसी कारण कई लताएँ स्तंभ आदि का सहारा लेकर खूब ऊपर चढ़ जाती हैं और कहीं मोड़ आए तो स्वयं मुड़ जाती हैं ।

गेहूँ, ज्वार आदि वनस्पतियाँ फल लगने के बाद सूख जाती हैं ।

गन्ना, केला आदि के पौधे 2-3 वर्ष तक और आम आदि कई वृक्ष वर्षों तक फल देते हैं ।

वनस्पति के प्रकार

प्रत्येक वनस्पतिकाय 12 प्रकार से पैदा होती है –

1. वृक्ष :- कुछ वनस्पति वृक्ष के रूप में पैदा होती है । जैसे आम, पीपल आदि ।

2. गुच्छा :- कुछ वनस्पति गुच्छे के रूप में पैदा होती है । जैसे कपास, मिर्च ।

3. पुष्प :- कुछ वनस्पति पुष्प के रूप में उगती है । जैसे गुलाब, मोगरा ।

4. लता :- कुछ वनस्पति लता के रूप में उगती है । जैसे वृक्ष पर उगने वाली लताएँ ।

5. वल्ली :- कुछ वनस्पति वल्ली के रूप में उगती है । जैसे ककडी, करेला, खरबूजा ।

6. पर्व :- कुछ वनस्पति पर्व के रूप में उगती है । जैसे गन्ना, बाँस आदि ।

7. तृण :- कुछ वनस्पति घास के रूप में पैदा होती है । जैसे-अनेक प्रकार की घास ।

8. वलय :- कई वनस्पति वलय के रूप में उगती है । जैसे केला, खजूर आदि ।

9. हरित :- कई वनस्पति शाक-भाजी के रूप में पैदा होती है । जैसे भिंडी, दूधी ।

10. औषधि :- कुछ वनस्पति औषधि के रूप में पैदा होती है । जैसे गेहूँ, जौ ।

11. जलरुह :- कई वनस्पति पानी में पैदा होती है । जैसे सिंघोड़ा, कमल आदि ।

12. छत्रक :- कई वनस्पति छत्र के रूप में पैदा होती है । जैसे मशरूम ।

वनस्पतिकाय के उगने के प्रकार

1) अग्र बीज :- कुछ वनस्पतियाँ उनके आगे का भाग बोने से उगती हैं । जैसे नागरवेल, कोरंट आदि ।

2) मूल बीज :- कुछ वनस्पतियाँ मूल भाग बोने से उगती है । जैसे उत्पल कंद आदि ।

3) स्कंध बीज :- कुछ वनस्पतियाँ डाली को बोने से उगती हैं । जैसे फूदीना ।

4) पर्व बीज :- कुछ वनस्पतियाँ गाँठों को बोने से उगती हैं । जैसे गन्ना, बाँस आदि ।

5) बीज बीज :- कुछ वनस्पतियाँ बीज बोने से पैदा होती हैं । जैसे जौ आदि धान्य ।

6) संमूर्च्छनज :- कुछ वनस्पतियाँ बोए बिना ही उगती हैं । जैसे- सिंघोड़ा आदि ।

वनस्पति में विविधता

वनस्पति में भी वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और शब्द होता है । यद्यपि वनस्पति में भी सभी वर्ण होते हैं, फिर भी हरे रंग की प्रधानता है । जहाँ वनस्पति अधिक हो, उसके लिए `हरियाली' शब्द का प्रयोग करते हैं ।

◆ **कुछ वनस्पतियाँ औषधि के रूप में होती हैं तो कुछ वनस्पतियाँ जहर रूप भी होती हैं । ब्राह्मी आदि औषधि गुणकारी है तो अफीम, धतूरा आदि विष रूप हैं ।**

◆ इलायची, लौंग आदि वनस्पति सुगंधित भी होती हैं तो कुछ वनस्पति दुर्गंध भी देती हैं ।

◆ **कुछ वनस्पतियाँ सिर्फ पानी में पैदा होती हैं, कुछ वनस्पतियाँ जमीन पर पैदा होती हैं, तो कुछ वनस्पतियाँ जल-स्थल दोनों जगह पैदा होती हैं । कुछ वनस्पतियाँ गर्मी की ऋतु में ज्यादा बढ़ती हैं, कुछ वनस्पतियाँ सर्दी में, तो कुछ वनस्पति वर्षा ऋतु में ज्यादा बढ़ती हैं ।**

◆ कुछ वनस्पतियों का तना बड़ा होता है तो फल बहुत छोटा होता है । जैसे वट वृक्ष । कुछ वनस्पतियाँ बहुत छोटी होती हैं, परंतु उनका फल बड़ा होता है । जैसे कलिंगर, ककड़ी ।

◆ **कुछ वनस्पतियों को जीव-जंतु बिल्कुल नुकसान नहीं करते हैं, तो कुछ को जीवजंतु तुरंत खा जाते हैं ।**

◆ कुछ वनस्पतियाँ सिर्फ मीठा पानी ही लेती हैं, कुछ वनस्पतियाँ सादे पानी में भी उग जाती हैं, तो कुछ खारे पानी में भी पैदा हो जाती हैं।

◆ **कुछ वनस्पतियाँ व्यवस्थित भूमि में ही उगती हैं तो कुछ पथरीले भाग में भी उग जाती हैं।**

◆ कुछ वनस्पतियाँ खूब विस्तार में फैल जाती हैं। भिन्न-भिन्न वनस्पतियों के मूल, तना, पत्ते, फूल और फल के आकार भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं।

जैन दर्शन की भाँति अन्य दर्शनकारों ने भी वनस्पति में जीवत्व को स्वीकार किया है।

'छांदोग्य-उपनिषद्' में कहा है कि **''सभी वनस्पतियों में आत्मा व्याप्त होकर रहा है।''**

मनुस्मृति में कहा है-**''सभी स्थावर जीवों में भी सुख-दुःख की अनुभूति होती है।''**

आज के वैज्ञानिकों ने भी वनस्पति में रहे चैतन्य तत्त्व को स्वीकार किया है-

फ्रेंच वैज्ञानिक **'कुवि'** ने 1828 के **'प्राणी राज्य'** समाचार-पत्र में लिखा है...अपनी तरह वनस्पति में भी चेतना है और वे भी मिट्टी, हवा और पानी में से खुराक लेती है।

'शोमान' वैज्ञानिक ने लिखा है-**''वनस्पति और जंतु-रचना का मूल एक समान है।''**

'क्यारेबाय' वैज्ञानिक ने सिद्ध किया है कि **''अपनी तरह वनस्पति में भी आकुंचन शक्ति है, वे भी खनिजों को खींचकर उसे अपने आहार और शरीर के रूप में परिणत करती हैं।''**

जलचर प्राणियों की तरह कई वनस्पतियाँ भी स्नायु रहित होती हैं।

'इत्थालीम' वनस्पति कीड़ों का भक्षण कर अपना जीवन टिकाती है।

कई वनस्पतियाँ कीट-पतंगों की तरह मनुष्य का भी भक्षण कर लेती है।

डार्विन वैज्ञानिक ने पंद्रह वर्षों तक शोध कर मांसभक्षी वनस्पतियों की सूची तैयार की है–

1. ड्रासीरा :- इसे गुजराती में सूर्य शिशिर कहते हैं । यह वनस्पति भारत व इंग्लेंड में पैदा होती है । इस वनस्पति के पत्ते भूमि का स्पर्श किए होते हैं । इसके पत्तों पर स्निग्धता होती है । मच्छर, मक्खी जैसे प्राणी उसका स्पर्श करते हैं वैसे ही वे चिपक जाते हैं । वे पत्ते उन जीव-जंतुओं पर अपना मारक रस डालते हैं, जिससे वे जंतु तुरंत मर जाते हैं । 4-6 घंटों में वे पत्ते संकुचित होते हैं, फिर 15-20 दिनों में वापस खिलते हैं, उसके काँटों में पुनः नया रस पैदा हो जाता है ।

ड्रासीरा वनस्पति मांस की तरह नाखून, बाल जैसे पदार्थों को भी आहार रूप में परिणत कर देती है ।

2. भांडा :- पानी में तैरनेवाली यह मूल बिना की वनस्पति है । इसके पत्ते के चारों ओर काँटे होते हैं । उसके पास कोशग्रंथि होती है । जैसे ही कोई जंतु कोशग्रंथि का स्पर्श करते हैं, वैसे ही पत्ते के दो भाग बंद हो जाते हैं और उस जीव-जंतु का शोषण कर वह वनस्पति अपना पोषण करती है ।

3. बटरवट :- इस पौधे में भी कीड़े को आकर्षित कर चिपका कर खत्म करने की घटना देखने को मिलती है ।

◆ न्युबीया वृक्ष पवन से कंपते समय Whistle व्हीसल की तरह आवाज करता है ।

◆ फिलीपाईंस में एक पौधे पर 9 फुट लंबा चौड़ा फूल दिखाई दिया था ।

◆ कलोइ के एक बगीचे में 80 फूट ऊँचा व 15 फुट चोड़ा पौधा है । उस पौधे पर प्रतिवर्ष 50000 गुलाब के फूल पैदा होते हैं ।

◆ **बाँस-**एक ही अंकुर में से अनेक बाँस पैदा होते हैं ।

◆ कलकत्ता के बोटेनिकल गार्डन में 2500 वर्ष प्राचीन वट वृक्ष है, उसके तने का व्यास 13 फुट है ।

◆ कार्निवोरस प्लांटस् के पौधे त्रस जीवों को खा जाते हैं ।

◆ वेनस फ्लाइट्रेप और पिचर प्लांट पौधे भी कीड़ों को खा जाते हैं ।

सभी वनस्पतियाँ उगते समय जब अंकुर के रूप में होती हैं, तब साधारण वनस्पतिकाय होती हैं, उसके बाद वह प्रत्येक वनस्पतिकाय हो तो प्रत्येक हो जाती है और साधारण वनस्पति की जाति की हो तो साधारण ही रहती है ।

◆ मूले जैसी कई वनस्पतियों का मूल साधारण होता है और अन्य भाग प्रत्येक रूप होता है ।

◆ समूचे वृक्ष का एक स्वतंत्र जीव होता है और फल-फूल आदि का स्वतंत्र अलग जीव होता है ।

◆ ***साधारण वनस्पतिकाय के जीव एक ही शरीर में अनंत की संख्या में उत्पन्न होते हैं, वे एक साथ में आहार व श्वासोच्छ्वास लेते हैं । उन सभी जीवों का एक ही साधारण शरीर होता है ।***

साधारण वनस्पतिकाय को अनंतकाय व निगोद भी कहा जाता है ।

साधारण वनस्पतिकाय

साधारण वनस्पतिकाय के मुख्य दो भेद हैं-

1) अव्यवहार राशि में रहे साधारण वनस्पतिकाय के जीव ।

2) व्यवहार राशि में रहे साधारण वनस्पतिकाय के जीव ।

अव्यवहार राशि के जीव अनादि काल से साधारण वनस्पतिकाय में ही रहे हुए होते हैं । भरत आदि क्षेत्रों में से जब एक आत्मा शाश्वत अजरामर मोक्ष पद प्राप्त करती है, तब एक आत्मा अव्यवहार राशि की निगोद में से बाहर निकलकर पृथ्वीकाय आदि रूप में उत्पन्न होती है ।

◆ अव्यवहार राशि में से बाहर निकलने में जीव का पुरुषार्थ काम नहीं करता है, परंतु जीव की भवितव्यता ही वहाँ काम करती है ।

◆ एक बार भी जो आत्मा अव्यवहार राशि में से बाहर निकल जाती है, फिर वह आत्मा व्यवहारराशि की ही कहलाती है, भले ही वह आत्मा मरकर सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकाय में चली जाय ।

व्यवहार और अव्यवहार राशि दोनों में भव्य अभव्य दोनों प्रकार के जीव होते हैं ।

बादर साधारण वनस्पति काय

प्रश्न 1 :- आलू में कितने जीव हैं ?

उत्तर :- साधारण वनस्पतिकाय में एक शरीर की अवगाहना अंगुल के असंख्यात भाग प्रमाण है, अर्थात् असंख्य शरीर जब इकट्ठे होते हैं, तब वे चक्षु से ग्राह्य होते हैं ।

अर्थात् एक आलू में साधारण वनस्पतिकाय के असंख्य शरीर हैं ।

उन एक-एक शरीर में अनंत-अनंत जीव हैं ।

अनंत की वह संख्या कितनी है ? तो बतलाते हैं ।

इस संसार में जितने सूक्ष्म व बादर पृथ्वीकाय के जीव हैं ।

इस संसार में जितने सूक्ष्म व बादर अप्काय के जीव हैं ।
इस संसार में जितने सूक्ष्म व बादर तेउकाय के जीव हैं ।
इस संसार में जितने सूक्ष्म व बादर वायुकाय के जीव हैं ।
इस संसार में जितने बादर प्रत्येक वनस्पतिकाय के जीव हैं ।
इस संसार में जितने पर्याप्त-अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जीव हैं ।
इस संसार में जितने पर्याप्त-अपर्याप्त त्रीन्द्रिय जीव हैं ।
इस संसार में जितने पर्याप्त-अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय जीव हैं ।
इस संसार में जितने पर्याप्त-अपर्याप्त पंचेन्द्रिय देव जीव हैं ।
इस संसार में जितने पर्याप्त-अपर्याप्त पंचेन्द्रिय नारक जीव हैं ।
इस संसार में जितने पर्याप्त-अपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीव हैं ।
इस संसार में संमूर्च्छिम व गर्भज पंचेन्द्रिय मनुष्य के जीव हैं ।

इन सब का योग Total करने पर भी असंख्य ही होते हैं-उन सबसे अनंतगुणा जीव साधारण वनस्पतिकाय के एक शरीर में होते हैं ।

इस प्रकार कंदमूल के भक्षण में अनंत जीवों की हिंसा-विराधना रही हुई है ।

प्रमाद से पतन

चौदह पूर्वधर महर्षि भी प्रमाद के वश हो जाय तो पूर्वों का ज्ञान भूल जाते हैं और मिथ्यात्व के कारण अत्यंत आसक्तिपूर्वक रसनेन्द्रिय आदि के विषयों का सेवन करते हुए साधारण वनस्पति में पैदा हो जाते हैं, जहाँ अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल तक जन्म-मरण करते रहते हैं ।

सूक्ष्म निगोद में रही हुई ऐसी अनंत आत्माएँ हैं ।

सूक्ष्म जीव

पत्तेयतरुं मुत्तुं, पंच वि पुढवाइणो सयललोए ।
सुहुमा हवंति नियमा, अंतमुहुत्ताउ अद्दिस्सा ।।14।।

शब्दार्थ :- पत्तेयतरुं=प्रत्येक वनस्पति को **मुत्तुं=**छोड़कर **पंचवि=**पाँचों **पुढवाइणो=**पृथ्वीकाय आदि **सयललोए=**सकल लोक में **सुहुमा=** सूक्ष्म **हवंति=**होते हैं **नियमा=**अवश्य **अंतमुहुत्ताउ=**अन्तर्मुहूर्त के आयुष्यवाले **अद्दिस्सा=**अदृश्य ।

गाथार्थ :- प्रत्येक वनस्पतिकाय को छोड़कर पृथ्वीकाय आदि पाँच (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और साधारण वनस्पतिकाय) अन्तर्मुहूर्त के आयुष्यवाले सूक्ष्म और अदृश्य संपूर्णलोक में निश्चित रूप से होते हैं ।

विवेचन :- चौदह राज लोकरूप इस विश्व में सुई की नोक जितना भी स्थान ऐसा नहीं है, जहाँ पृथ्वीकाय आदि पाँचों सूक्ष्म जीव नहीं रहते हैं ।

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय ये चारों सूक्ष्म और बादर दोनों होते हैं ।

वनस्पतिकाय के जो साधारण व प्रत्येक भेद हैं, उनमें साधारण वनस्पतिकाय सूक्ष्म व बादर दोनों रूप में मिलते हैं, जबकि प्रत्येक वनस्पतिकाय सिर्फ बादर ही होती है, सूक्ष्म नहीं ।

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, प्रत्येक वनस्पतिकाय और साधारण वनस्पतिकाय ये छह बादर रूप भी हैं अर्थात् इन जीवों के शरीर को इन्द्रियों से अनुभव किया जा सकते हैं ।

इस प्रकार स्थावर में एकेन्द्रिय के कुल 5 सूक्ष्म और 6 बादर मिलाकर 11 भेद हुए । ये सभी पर्याप्त और अपर्याप्त रूप हैं, अतः एकेन्द्रिय के कुल 22 भेद हुए ।

सूक्ष्म :- चाहे जितने जीव व शरीर इकट्ठे हो जायें तो भी जो चर्म चक्षु या यंत्र की मदद से देखे नहीं जा सकते हैं, उन्हें सूक्ष्म कहते हैं ।

बादर :- जिस एक जीव या अनेक जीवों के शरीर को आँख या सूक्ष्म-दर्शक यंत्र के माध्यम से देखा या जाना जा सके, उसे **बादर** कहते हैं ।

पर्याप्त और अपर्याप्त जीव

समय :- काल के अविभाज्य अंश, जिसे केवली भी पुनः दो भागों में विभाजित न कर सकें, उसको समय कहा जाता है ।

मुहूर्त :- दो घड़ी अर्थात् 48 मिनिट के समय को मुहूर्त कहते हैं ।

अन्तर्मुहूर्त :- दो घड़ी के भीतर के काल को अन्तर्मुहूर्त कहते हैं । 9 समय को जघन्य अन्तर्मुहूर्त और एक समय न्यून 48 मिनिट को उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कहते हैं ।

पर्याप्ति की व्याख्या :- आत्मा जब पूर्व शरीर का त्याग कर नए शरीर को धारण करती हैं, तब उसे अपने नए शरीर का निर्माण करना होता है । अपने नवीन जन्मक्षेत्र में आत्मा एक साथ पुद्गलों का उपचय करती है, उसे अथवा उससे उत्पन्न होनेवाली पौद्गलिक शक्ति को पर्याप्ति कहते है ! बृहद् संग्रहणी में कहा हैं-

``जिस दलिक रुप पुद्‌गल समुह से आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्‌वास, भाषा और मन की रचना होती है, उन दलिकों का अपने अपने विषय रुप में परिणमन के प्रति जो शक्ति रुप करण है उसे पर्याप्ति कहते है ।''

पर्याप्तियों के छह भेद

1. आहार पर्याप्ति :- पुद्‌गलों के उपचय से उत्पन्न शक्ति से आहार ग्रहण कर उसे खल (कचरा) और रस के रूप में परिणमन करने की शक्ति को आहार पर्याप्ति कहते हैं । यहाँ खल शब्द से मल-मूत्रादि रूप असार पुद्‌गल और रस शब्द से सात धातु में परिणमन योग्य जल जैसा प्रवाही पदार्थ समझना चाहिए ।

2. शरीर पर्याप्ति :- जीव पुद्‌गलोपचय से उत्पन्न शक्ति द्वारा रस (प्रवाही) रूप में परिणत आहार को सप्त धातु रूप में परिणत करने की शक्ति को शरीर पर्याप्ति कहते हैं । इस पर्याप्ति द्वारा आत्मा रस को रक्त, मांस, चर्बी, हड्डी, मज्जा और वीर्य बनाकर उसे शरीर रूप में बनाते हैं ।

3. इन्द्रिय पर्याप्ति :- शरीर रूप में परिणत पुद्‌गलों में से इन्द्रिय योग्य पुद्‌गलों को ग्रहण कर उसे इन्द्रिय रूप में परिणमन करने की शक्ति को इन्द्रिय पर्याप्ति कहते हैं ।

4. श्वासोच्छ्‌वास पर्याप्ति :- श्वासोच्छ्‌वास योग्य पुद्‌गल वर्गणा को ग्रहण कर उसे श्वासोच्छ्‌वास रूप में परिणमन करने की शक्ति को श्वासोच्छ्‌वास पर्याप्ति कहते हैं । बाहर के वायु को शरीर में लेना और अंदर के वायु को बाहर निकालने को श्वासोच्छ्‌वास कहते हैं ।

5. भाषा पर्याप्ति :- आत्मा जिस शक्ति विशेष से भाषा योग्य वर्गणा (पुद्‌गलों) को ग्रहण कर उन्हें भाषा रूप में परिणत करती है, उस शक्ति को भाषा पर्याप्ति कहते हैं ।

6. मनःपर्याप्ति :- जिस शक्ति से आत्मा मनोयोग्य वर्गणा (पुद्‌गलों) को ग्रहण कर उन्हें मन रूप में परिणत करती है उसे मनःपर्याप्ति कहते हैं ।

किस जीव को कितनी पर्याप्ति ?

सभी संसारी जीव समस्त पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं करते हैं ।

1. एकेन्द्रिय जीव की चार पर्याप्ति :- आहार, शरीर, इन्द्रिय व

श्वासोच्छ्वास को ही पूर्ण करते हैं । एकेन्द्रिय जीवों में भाषा व मन का अभाव होता है ।

2. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव, पाँच पर्याप्ति के योग्य होते हैं ।

3. संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव सभी छह पर्याप्तियों को पूर्ण करते हैं ।

पर्याप्त जीव :- जो जीव स्वयोग्य पर्याप्तियों को जब पूर्ण करता है तब वह जीव पर्याप्त कहलाता है । पर्याप्त जीव अपने योग्य सभी पर्याप्तियों को पूर्ण करने के बाद ही मृत्यु प्राप्त करता है ।

अपर्याप्त जीव :- जो जीव स्व योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण करने के पहले ही मृत्यु प्राप्त कर लेता है उसे अपर्याप्त कहते हैं ।

ये सभी सूक्ष्म जीव अन्तर्मुहूर्त के आयुष्यवाले होते हैं ।

हथियार या अग्नि द्वारा भी इन जीवों का छेदन-भेदन नहीं होता है ।

द्वीन्द्रिय जीव

संख कवड्डय गंडुल, जलोय चंदणग अलस लहगाइ ।
मेहरि किमि पूअरगा, बेइंदिय माइवाहाइ ।।15।।

शब्दार्थ :- संख=शंख, **कवड्डय=**कौड़ी **गंडुल=**गंडोल-पेट में पैदा होनेवाले कीड़े **जलोय=**जोंक **चंदणग=**अक्ष **अलस=**केंचुए **लहगाइ=**लालयक आदि **मेहरि=**काष्ठ के कीड़े **किमि=**कृमि **पूअरगा=**पौरे **बेइंदिय=**दो इन्द्रियवाले **माइवाहाइ=**मातृवाहिका आदि

गाथार्थ :- शंख, कौड़ी, गंडोल, जोंक, अक्ष, भूनाग, लालयक, काष्ठ के कीड़े, कृमि, पूरा, मातृवाहिका आदि द्वीन्द्रिय जीव हैं ।

विवेचन :- स्थावर जीवों के वर्णन के बाद अब त्रस जीवों का वर्णन प्रारंभ करते हैं । त्रस अर्थात् सुख-दुःख आदि अवस्था में जो जीव अपने एक स्थान से अन्य स्थान में जा आ सकते हैं, उन्हें त्रस जीव कहते हैं ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ये सभी त्रस कहलाते हैं ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय को विकलेन्द्रिय भी कहते हैं ।

द्वीन्द्रिय अर्थात् जिन जीवों के स्पर्शन इन्द्रिय और रसनेन्द्रिय रूप दो इन्द्रियाँ होती हैं, उन्हें द्वीन्द्रिय जीव कहते हैं ।

उपर्युक्त गाथा में द्वीन्द्रिय जीवों के कुछ नाम निर्देश किए हैं-

1. शंख :- समुद्र में पैदा होनेवाले एक प्रकार के कीड़े को शंख कहते हैं । शंख छोटे-बड़े अनेक प्रकार के होते हैं । **दक्षिणावर्त आदि शंखों को मंगल स्वरूप भी माना गया है ।** मंदिर व घरों में हमें जो शंख दिखाई देता है, वह तो शंख के जीव के रहने का घर है, जब यह शंख जीवित होता है तब उसमें बदामी रंग का कीड़ा होता है । समुद्र में जब ज्वार आता है, तब हजारों शंख समुद्र के किनारे आ जाते हैं और वे जीवित होते हैं ।

2. कोड़ा-कोड़ी :- यह भी पानी में पैदा होता है । समुद्र व तालाब में छोटे बड़े आकार में कोड़ा-कोड़ी जीव होते हैं । व्यवहार में जिन कौड़ियों का उपयोग होता है, वे तो उन प्राणियों के मृत कलेवर हैं ।

3. गंडोल :- पेट में पैदा होनेवाले बडे कृमि को गंडोल कहते हैं ।

4. जोंक :- यह भी पानी में पैदा होने वाला कीड़ा है । दो-तीन इंच लंबा कीड़ा होता है । शरीर में बिगड़े हुए खून को चूसने का काम करता है ।

5. अक्ष :- यह भी शंख की तरह समुद्र में पैदा होता है । निर्जीव होने के बाद गुरु-स्थापनाचार्य के रूप में इसका उपयोग किया जाता है ।

6. केंचुआ :- वर्षा ऋतु में बरसात गिरने के साथ ही हजारों की संख्या में भूमि में ये केंचुएँ पैदा हो जाते हैं । साँप के आकार के लाल रंग के होते हैं ।

7. लालायक :- एक रात्रि प्रसार होने के बाद बासी रोटी, रोटले आदि में ये लालायक जीव पैदा हो जाते हैं ।

8. मेहरि :- ये कीड़े लकड़ी में पैदा होते हैं । इन्हें घुन के कीड़े भी कहते हैं ।

9. कृमि :- पेट में, घाव में तथा मसे आदि में ये कीड़े पैदा होते हैं ।

10. पूरा :- पानी जहाँ पड़ा रहता है, वहाँ ये कीड़े पैदा हो जाते हैं । इनका रंग लाल होता है और काला मुंह होता है ।

11. चूड़ेल :- यह भी एक प्रकार का द्वीन्द्रिय जीव है ।

इसके सिवाय भी अनेक द्वीन्द्रिय जीव होते हैं ।

12. पानी में पैदा होनेवाली मोती की **सीप** भी द्वीन्द्रिय जीव है ।

13. नाहरु :- मनुष्य के हाथ-पैर में से लंबे-लंबे डोरे के समान निकलता है । खराब पानी पीने से ये जीव शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और फिर लंबे डोरे के समान बाहर निकलते हैं ।

14. द्विदल :- (दलहन) के साथ जब कच्चे दूध, दही व छाश का मिश्रण होता है, तब भी द्वीन्द्रिय जीव पैदा हो जाते हैं ।

त्रीन्द्रिय जीव

गोमी मंकण जूआ, पिपीलि-उद्देहिया य मक्कोडा ।
इल्लिय घय मिल्लिओ, सावय गोकीड जाइओ ।।16।।

गद्दहय चोरकीडा, गोमयकीडा य धन्नकीडा य ।
कुंथु गोवालिय इलिया, तेइंदिय इंदगोवाइ ।।17।।

शब्दार्थ :- गोमी=कानखजूरा **मंकण=**खटमल **जूआ=**जूं **पिपीलि=**चींटी **उद्देहिया=**दीमक **मक्कोडा=**मकोड़ा **इल्लिय=**लट-(अनाज में पैदा होनेवाले कीड़े) **घय मिल्लिओ=**घृतेलिका (घी में पैदा होनेवाले कीड़े) **सावय=**चर्मयूका **गोकीड जाइओ=**गोकीट की जातियाँ **गद्दहय=**गर्दभक (सफेद कीड़े) **चोरकीडा=**विष्ठा के कीड़े **गोमयकीडा=**गोबर के कीड़े **धन्नकीडा=**अनाज के कीड़े **कुंथु=**कंथवा **गोवालिय=**गोपालिका **इलिया=**ईलिका **तेइंदिय=**तीन इंद्रियवाले **इंदगोवाइ=**इंद्रगोप आदि **(16-17)**

गाथार्थ :- कानखजूरा, खटमल, जूं-लीख, चींटी, दीमक, मकोड़ा, लट, घृतेलिका, चर्मयूका, गोकीट की जातियाँ, गर्दभक, विष्ठा के कीड़े, गोबर के कीड़े, घुन, कुंथु, गोपालिका, सुरसली व इंद्रगोप आदि त्रीन्द्रिय जीव हैं ।

विवेचन :- द्वीन्द्रिय के बाद अब त्रीन्द्रिय जीवों का वर्णन करते हैं । इन जीवों के स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं । पृथ्वीतल पर अनेक प्रकार के त्रीन्द्रिय जीव हैं । यहाँ कुछ जीवों के नाम निर्देश करते हैं ।

1. कानखजूरा :- इसके बहुत से पैर होते हैं, यह भूमि पर चलता है ।

2. खटमल :- लकड़ी की खाट, गद्दी, तकिये आदि में पैदा होते हैं। रात्रि में आकर मनुष्य का खून पीते हैं ।

3. चींटी :- लाल और काले रंग की होती है। लाल चींटी छोटी और काली चींटी बड़ी होती है । लाल चींटी एक बार चिपकने के बाद जल्दी निकलती नहीं है ।

4. दीमक :- लकड़ी-कागज आदि में लगनेवाली उधई । दीवार या लकड़ी के कबाट में बाहर से मिट्टी की लाइन दिखती है । कागज, कपड़े आदि को नष्ट कर देती है ।

5. चींटा :- काले रंग के इस कीड़े को मकोड़ा भी कहते हैं। गुड-शक्कर के आसपास खूब पैदा होता है । शरीर पर चिपकने के बाद जल्दी उखड़ता नहीं है ।

(कुमारपाल महाराजा ने एक मकोड़े को बचाने के लिए अपने शरीर की आसपास की चमड़ी काट ली थी ।)

6. इल्ली :- चावल आदि धान्य में पैदा होती है ।

7. घृतेलिका :- घी में पैदा होनेवाला जीव ।

8. जूं :- मस्तक में बालों में पैदा होती है। मस्तक में काली व कपड़े में सफेद जूं पैदा होती है । शरीर के मैल से उत्पन्न होकर मनुष्य के सिर व कपड़े में उत्पन्न होती है ।

9. सावय :- बाल के मूल में उत्पन्न होकर वहीं पर चिपक कर रहती है । संस्कृत में इसे चर्मयूका कहते हैं ।

10. गोकीट :- कुत्ते आदि के कान में पैदा होता है ।

11. गर्दभक :- गोशाला आदि की गीली मिट्टी में सफेद रंग के ये कीड़े पैदा होते हैं ।

12. चोरकीड़ा :- भूमि में अपना मुँह करके गोलाकार छिद्र करनेवाले कीड़े चोरकीड़े कहलाते हैं ।

13. गोमय कीड़े :- गाय आदि के गोबर में पैदा होनेवाले कीड़े गोमय कीड़े कहलाते हैं ।

14. अनाज के कीड़े :- गेंहू आदि अनाज में पैदा होनेवाले लालरंग के कीड़े ।

15. गोपालिका :- एक अप्रसिद्ध कीड़ा ।

16. ईलिका :- गुड़-खांड में पैदा होनेवाली ईयल ।

17. इन्द्रगोप :- चातुर्मास के प्रारंभ में वर्षा होने पर लाल रंग के कीड़े पैदा होते हैं । इनकी चाल खूब धीमी होती है । गुजराती में इसे गोकल गाय कहते हैं ।

चतुरिन्द्रिय जीव

चउरिंदिया य बिच्छु, ढिंकुण भमरा य भमरिया तिड्डा ।
मच्छिय डंसा मसगा, कंसारी कविल डोलाइ ।।18।।

शब्दार्थ :- चउरिंदिया=चार इन्द्रियवाले **य=**और **बिच्छु=**बिच्छू **ढिंकुण=**ढिंकूण **भमरा=**भौंरा **य=**और **भमरिया=**ततैया **तिड्डा=**तीड़ **मच्छिय=**मक्खी, मधुमक्खी, **डंसा=**डाँस **मसगा=**मच्छर **कंसारी=**कंसारिका **कविल=**मकड़ी **डोलाइ=**हरे रंग की टिड्डी ।

गाथार्थ :- बिच्छु, ढिंकुण, भौंरा, ततैया, टिड्डी, मक्खी, मधु-मक्खी, डाँस, मच्छर, कंसारिका, मकड़ी और हरे रंग की टिड्डी आदि चार इन्द्रियवाले जीव हैं ।

विवेचन :- जिन जीवों के स्पर्शन इन्द्रिय, रसना इन्द्रिय, घ्राण इन्द्रिय और चक्षु इन्द्रिय ये चार इन्द्रियाँ होती हैं, उन्हें चतुरिन्द्रिय जीव कहते हैं ।

दो इन्द्रियवाले जीवों को लगभग पाँव नहीं होते हैं । तीन इन्द्रियवाले जीवों को चार, छह या उससे भी अधिक पाँव होते हैं । चार इन्द्रियवाले जीवों को छह, आठ या उससे भी अधिक पाँव होते हैं ।

तीन इन्द्रिय और चार इन्द्रियवाले जीवों को आगे के भाग में मूंछों की तरह बाल होते हैं ।

उपर्युक्त गाथा में चतुरिन्द्रिय जीवों के कुछ नामों का निर्देश किया है ।

1. बिच्छु :- यह अपनी ऊँची पूँछ से काटनेवाला जहरीला जंतु है । इसका जहर चढ़ने पर खूब वेदना होती है । छोटे-बड़े आकार में अनेक प्रकार के होते हैं ।

2. ढिंकुण :- पशुओं के शरीर पर बैठनेवाली एक प्रकार की मक्खी को ढिंकुण बगई कहते हैं ।

3. भ्रमर :- इसे भौंरा कहते हैं । छह पैर होने से इसे षट्पद भी कहते हैं । फूलों का रंग चूसने के कारण इसे मधुकर भी कहते हैं । इसका रंग खूब काला होता है ।

4. भमरी :- यह पीले रंग की होती है और कहीं भी छत्ता बना देती है । इसके काटने पर खूब पीड़ा होती है ।

5. तीड़ :- ये समूह में पैदा होते हैं और एक दिशा में प्रवास करते हैं । खेत में आने पर सब पकी फसल को खा जाते हैं ।

6. मक्खी :- यह प्रसिद्ध प्राणी है । मधुमक्खी का भी इसी में समावेश हो जाता है ।

7. डाँस :- वर्षा काल में बडे-बडे मच्छर के रुप में इसकी उत्पत्ति होती है ।

8. मच्छर :- डाँस जैसा ही मनुष्य को काटनेवाला प्राणी है । मच्छर कांटने से मलेरिया आदि भी हो जाता है ।

9. कंसारी :- प्रसिद्ध कीट-कंसारी है ।

10. टिड्डी :- यह हरे रंग का प्राणी होता है । वर्षा ऋतु में मकई के खेत में पाया जाता है । मधुमक्खी की तरह काटता है । गुजराती में इसे खड़माकड़ी भी कहते है ।

विकलेन्द्रियों के छह भेद

विकलेन्द्रिय के द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय ये तीन भेद होते हैं । स्व योग्य पर्याप्ति को पूर्ण करके मरनेवालों को पर्याप्त और स्व योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं करनेवाले अपर्याप्त कहलाते हैं । इस प्रकार विकलेन्द्रिय के तीन पर्याप्त और तीन अपर्याप्त ये छह भेद होते हैं ।

पंचेन्द्रिय जीव

पंचिंदिया य चउहा, नारय-तिरिया-मणुस्स देवा य ।
नेरइया सत्तविहा, नायव्वा पुढवि-भेएणं ।।19।।

शब्दार्थ :- पंचिंदिया=पाँच इन्द्रियवाले **य=**और **चउहा=**चार प्रकार के **नारय=**नारक **तिरिया=**तिर्यंच **मणुस्स=**मनुष्य **देवा=**देव **य=**और **नेरइया=**नरक के जीव **सत्तविहा=**सात प्रकार के **पुढवि=**पृथ्वी **भेएण=**भेद से **नायव्वा=**जानने चाहिए ।

गाथार्थ :- पाँच इन्द्रियवाले जीव चार प्रकार के हैं-नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव । पृथ्वी के भेद से नरक में रहनेवाले जीव सात प्रकार के जानने चाहिए ।

विवेचन :- पाँच इन्द्रियोंवाले जीव चारों गतियों में पाए जाते हैं । उनमें नरक के जीव नरक पृथ्वी के भेद से सात प्रकार के बतलाए हैं ।

सात नरकावास

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय रूप द्रव्य जिस आकाश में रहते हैं, उसे लोकाकाश कहते हैं । यह लोकाकाश 14 राजलोक प्रमाण है । इस 14 राजलोक के बाहर अनंत आकाश है, उसे अलोकाकाश कहते हैं । धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, जीवास्तिकाय के जितने प्रदेश हैं, उतने ही प्रदेश लोकाकाश के हैं, अर्थात् इन सभी के प्रदेश समान हैं । ये प्रदेश असंख्य हैं ।

अधोलोक में नरक के जीवों के रहने के लिए 7 पृथ्वियाँ हैं–

(1) रत्नप्रभा

इस पहली नरक पृथ्वी की एक राजलोक चौड़ाई तथा मोटाई 1,80,000 योजन है । उसमें 1000 योजन ऊपर और 1000 योजन नीचे की जगह छोड़ने पर जो 1,78,000 योजन बचते हैं, उसमें कुल 13 प्रतर आए हुए हैं, प्रत्येक प्रतर में नरकावास हैं । पहली नरक में कुल 30 लाख नरकावास हैं, उनमें नारक जीव पैदा होते हैं ।

असंज्ञी जीव सिर्फ पहली नरक में उत्पन्न हो सकते हैं । पहली नरक में जघन्य आयुष्य 10,000 वर्ष और उत्कृष्ट आयुष्य एक सागरोपम प्रमाण है । रत्नों जैसी प्रभा होने से इस पृथ्वी को रत्नप्रभा कहते हैं ।

पहली नरक से निकला हुआ जीव तीर्थंकर व चक्रवर्ती बन सकता है। पहली नरक के जीवों को अशुभ कापोत लेश्या होती है ।

2) शर्करा प्रभा :- इस दूसरी नरक पृथ्वी की चौड़ाई 2.5 राजलोक तथा मोटाई 1,32,000 योजन है । इस पृथ्वी में कुल 11 प्रतर हैं । इन 11 प्रतरों में कुल 25 लाख नरकावास हैं, जिनमें नरक के जीव उत्पन्न होते हैं। कंकड जैसी प्रभा होने से इस पृथ्वी को शर्करा प्रभा कहते हैं ।

भुज परिसर्प जीव पहली व दूसरी नरक तक उत्पन्न हो सकते हैं ।

दूसरी नरक में जघन्य आयुष्य 1 सागरोपम और उत्कृष्ट आयुष्य तीन सागरोपम है ।

दूसरी नरक से निकला हुआ जीव तीर्थंकर, वासुदेव और प्रतिवासुदेव बन सकता है ।

दूसरी नरक के जीवों को तीव्र अशुभ कापोत लेश्या होती है ।

3) वालुका प्रभा :- इस तीसरी नरक पृथ्वी की चौड़ाई चार राजलोक तथा मोटाई 1 लाख 28 हजार योजन है। इस पृथ्वी में 9 प्रतर और 15 लाख नरकावास हैं ।

पहली तीन नरकों में पक्षी मरकर उत्पन्न हो सकते हैं। तीसरी नरक में जघन्य आयुष्य तीन सागरोपम और उत्कृष्ट आयुष्य सात सागरोपम है ।

तीसरी नरक में से निकला हुआ जीव मनुष्यपने को प्राप्तकर यावत् तीर्थंकर बन सकता है ।

इन नारक जीवों को कापोत-नील नामक अशुभ लेश्या होती है। बालु के जैसी प्रभा होने से इस पृथ्वी को वालुका प्रभा कहते हैं ।

4. पंकप्रभा :- चौथी नरक पृथ्वी की चौड़ाई पांच राजलोक तथा मोटाई 1 लाख 20 हजार योजन है । इस पृथ्वी में 7 प्रतर और 1 लाख नरकावास हैं जिनमें चौथी नरक के जीव उत्पन्न होते हैं ।

चौथी नरक में जघन्य आयुष्य 7 सागरोपम और उत्कृष्ट आयुष्य 10 सागरोपम है ।

सिंह एक से चार नरक तक उत्पन्न हो सकता है । चौथी नरक से निकला हुआ जीव मनुष्यपना प्राप्त करके सामान्य केवली होकर मोक्ष में जा सकता है ।

इन नारक जीवों को अशुभ नील लेश्या होती है । कीचड़ जैसी प्रभा होने से इस पृथ्वी को पंकप्रभा कहते हैं ।

5. धूमप्रभा :- धूमप्रभा पृथ्वी की चौड़ाई छह राजलोक तथा मोटाई 1 लाख 18 हजार योजन प्रमाण है । इस पृथ्वी में 5 प्रतर व तीन लाख नरकावास हैं, जहाँ 5वीं नरक के जीव उत्पन्न होते हैं ।

5वीं नरक में जघन्य आयुष्य 10 सागरोपम व उत्कृष्ट आयुष्य 17 सागरोपम है ।

सर्प व उर परिसर्प आदि 5वीं नरक तक उत्पन्न हो सकते हैं । धुएँ जैसी प्रभा होने से इस पृथ्वी को धूमप्रभा कहते हैं ।

5वीं नरक से निकला हुआ जीव मनुष्यपने को प्राप्तकर सर्वविरतिपना प्राप्त कर सकता है, परंतु केवलज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है ।

इन नारक जीवों के नील-कृष्ण अशुभ लेश्या होती है ।

6. तमःप्रभा :- इस नरक पृथ्वी की चौड़ाई साढे छह राजलोक प्रमाण तथा मोटाई 1 लाख 16 हजार योजन है । छठी नरक के तीन प्रतरों में 99995 नरकावास हैं ।

छठी नरक में जघन्य आयुष्य 17 सागरोपम तथा उत्कृष्ट आयुष्य 22 सागरोपम है ।

छठी नरक के जीवों के अशुभ कृष्ण लेश्या होती है । स्त्रियाँ छठी नरक तक उत्पन्न हो सकती हैं ।

इन नारक जीवों को तीव्रतम अशुभ कृष्ण लेश्या होती है । छठी नरक से निकला हुआ देशविरति प्राप्त कर सकता है, किंतु सर्वविरति आदि की भूमिका को नहीं । अंधकार की प्रभा होने से उसे तमः प्रभा कहते हैं ।

7. महातमःप्रभा :- इस नरक पृथ्वी की चौड़ाई सात राजलोक प्रमाण तथा मोटाई 1 लाख 8 हजार योजन है । 7वीं नरक में 1 प्रतर और 5 नरकावास हैं ।

सातवीं नरक में जघन्य आयुष्य 22 सागरोपम और उत्कृष्ट आयुष्य 33 सागरोपम है ।

7वीं नरक में रहे जीवों को अतितीव्र कृष्णलेश्या होती है । सातवीं नरक से निकला हुआ जीव सम्यग्दर्शन पा सकता है । गाढ़ अंधकार की प्रभा होने से इस पृथ्वी को महातमःप्रभा कहते हैं ।

तंदुलिक मत्स्य व मनुष्य पुरुष आदि मरकर पहली से 7 वीं नरक में उत्पन्न हो सकते हैं ।

ये सभी 7 पृथ्वियाँ घनांबु, घनवात, तनुवात और आकाश के आधार पर रही हुई हैं । घनांबु अर्थात् घन पानी और घनवात अर्थात् घन वायु, तनवात अर्थात् पतला वायु !

सबसे नीचे आकाश है, आकाश के आधार पर तनुवात है, तनुवात के आधार पर घनवात है, धनवात के आधार पर धनोदधि है, उसके ऊपर महातमः प्रभा पृथ्वी है । उसके बाद इसी क्रम से आकाश, तनुवात, घनवात और घनोदधि (घनांबु) रहा हुआ है और उसके ऊपर छठी नरक पृथ्वी रही हुई है । इसी क्रम से पहली नरक-पृथ्वी तक समझ लेना चाहिए ।

सात नरकों में कुल 84 लाख नरकावास हैं ।

नरकावास तीन प्रकार के होते हैं-1 इन्द्रक 2 पंक्तिगत और 3 पुष्पावकीर्ण । एकदम मध्य में आए नरकावासों को इन्द्रक कहते हैं ।

दिशा-विदिशा में पंक्तिबद्ध नरकावासों को पंक्तिगत कहते हैं ।

बिखरे हुए फूलों की भांति इधर-उधर रहे नरकावासों को पुष्पावकीर्ण कहते हैं ।

इन्द्रक नरकावास गोल होते हैं । पंक्तिगत नरकावास त्रिकोण-चतुष्कोण आदि होते हैं ।

पुष्पावकीर्ण नरकावास भिन्न-भिन्न प्रकार के अशुभ आकारवाले होते हैं ।

सभी नरकावासों की ऊँचाई तीन हजार योजन होती है ।

कुछ नरकावास संख्यात योजन लंबे-चौड़े और कुछ असंख्यात योजन लंबे-चौड़े होते हैं ।

पहले नरक में पहला सीमंतक नरकावास 45 लाख योजन लंबा-चौड़ा है तथा 7 वीं नरक में रहा अप्रतिष्ठान-इंद्रक नरकावास 1 लाख योजन लंबाचौड़ा है ।

नरक जीवों की वेदना

1) क्षेत्र कृत वेदना :- 7 नरकावासों में ज्यों-ज्यों नीचे जाते हैं त्यों-त्यों चारों ओर अत्यंत ही गाढ़ अंधकार होता जाता है । श्लेष्म, मल-मूत्र, खून, मांस, चर्बी आदि जैसे स्वाभाविक अशुभ पृथ्वी के परिणामों से नरकावास की भूमि व्याप्त होती है । श्मशान की भूमि में रहे हड्डी, मांस, दांत, चमड़े आदि के ढेर की तरह सर्वत्र भयंकर दुर्गंध रही होती है । वास्तव में, नरक में हड्डी, मांस आदि अशुभ पदार्थों के ढेर तो नहीं होते हैं, परंतु उस पृथ्वी पर रही अशुचि व दुर्गंधपूर्ण वातावरण को समझाने के लिए ये उपमाएँ दी गई हैं । अर्थात् उन पृथ्वियों पर स्वाभाविक ही इस तरह का वातावरण होता है ।

मरे हुए कुत्ते, सियार, साँप, नेवले, चुंडे, हाथी, घोड़े व मनुष्य के मुर्दों की तरह सर्वत्र दुर्गंध फैली हुई होती है । भयंकर वेदना के कारण नरक के जीव सतत चिल्लाते रहते हैं...भयंकर करुण विलाप करते हैं...करुण चीत्कार करते हैं ।

नरक के जीवों के शरीर, शरीर के अवयव, आकार, रूप, रस, गंध, स्वाद आदि अत्यंत खराब होते हैं । उन्हें देखते ही घृणा पैदा होती है । अत्यंत दयनीय उनकी शरीर रचना होती है । उनके शरीर के सभी अवयव बेडौल होते हैं ।

2) नरक में उष्ण वेदना :- ज्येष्ठ मास के गर्मी के दिनों में रेगिस्तान की मरुभूमि में चारों ओर लू (गर्म हवा) चल रही हो, आकाश में एक भी बादल न हो, मध्याह्न का सूर्य आग बरसा रहा हो, चारों ओर अग्नि प्रज्वलित हो, ऐसी स्थिति में पित्त प्रकृति वाले मनुष्य को जो उष्ण वेदना होती है, उससे अनंतगुणी वेदना नरक में होती है ।

ऐसे नारक जीव को नरक भूमि में से उठाकर टाटा की सुलगती हुई भट्टी के पास भयंकर गर्मी के दिनों में लाकर सुला दिया जाय तो भी उसे गाढ़ निद्रा आ जाती है ।

इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि नरक में कितनी गाढ़ उष्ण वेदना होती होगी ।

3) नरक में शीत वेदना :- पौष मास की ठंडी के दिनों में हिमालय पर्वत पर, जहाँ चारों ओर बर्फ गिर रहा हो, तीव्रगति से ठंडी-ठंडी हवा चल

रही हो, ऐसे ठंडे वातावरण में हाथ-पैर काँपते हुए...ठंडी से जिसका पूरा शरीर कँप रहा हो, ऐसे कमजोर मनुष्य को खुले बदन रखा जाय और उसे जिस शीत-वेदना का अनुभव होता है, उससे अनंतगुणी शीतवेदना नरक में होती है ।

नरक में शीत वेदना सहन कर रहे नारक जीव को नरक में से उठाकर पौष मास में बर्फ गिरते हुए हिमालय पर्वत पर खुले शरीर सुला दिया जाय तो उसे तत्काल नींद आ सकती है, इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि नरक में कितनी भयंकर शीत वेदना होती होगी !

पहली, दूसरी व तीसरी नरक में अत्यंत उष्ण वेदना होती है ।

चौथी नरक में अधिकांश नारकों को उष्ण वेदना व कुछ को शीत वेदना होती है ।

पाँचवी नरक में अधिकांश नारकों को शीत वेदना तथा कुछ को उष्ण वेदना होती है ।

छठी-सातवीं नरक में सिर्फ शीत वेदना होती है ।

अशुभ-परिणाम :- नरक में पुद्गलों का परिणमन अत्यंत ही अशुभ होता है ।

1) बंधन :- शरीर के साथ संबंध में आनेवाले पुद्गल अत्यंत अशुभ होते है ।

2) गति :- नरक के जीवों को अप्रशस्त विहायोगति नामकर्म का उदय होने से उनकी चाल ऊँट आदि की तरह अप्रशस्त होती है ।

3) संस्थान :- नारक जीवों की आकृति तथा भूमि की रचना अत्यंत उद्वेगकारक होती है ।

4) भेद :- शरीर में से निकलने वाले पुद्गल अत्यंत अशुभ होते हैं ।

5) वर्ण :- सर्वत्र अंधकार छाया रहता है, तल भाग भी श्लेष्म आदि की तरह अत्यंत ही अशुचि पदार्थों से लिप्त होता है ।

6) गंध :- नरक की भूमि में सर्वत्र मल-मूत्र-मांस आदि जैसी तीव्र दुर्गंध होती है ।

7) रस :- नरक के पदार्थों का रस नीम से भी अधिक कड़वा होता है ।

8) स्पर्श :- नरक के पदार्थों का स्पर्श अत्यंत उष्ण और बिच्छु के डंक से भी अधिक पीड़ाकारक होता है ।

9) अगुरुलघु :- शरीर का अगुरुलघु परिणाम भी अनिष्टदायी होता है ।

10) शब्द :- `बचाओ ! बचाओ !' आदि करुण शब्द सर्वत्र सुनाई देते हैं ।

◆ **अशुभ देह :-** वैक्रिय वर्गणा के पुद्गलों से बना हुआ होने पर भी नरक के जीवों का शरीर देवताओं की तरह सुंदर नहीं होता है, बल्कि अत्यंत ही खराब होता है । नरक के जीवों का हुंडक संस्थान होता है । उनके शरीर का वर्ण अतिशय श्याम व भय उत्पन्न करने वाला होता है ।

◆ **क्षुधावेदना :-** जगत् में रहे समस्त अनाज का भक्षण कर दे, घी-दूध आदि का पान कर दे तो भी क्षुधा शांत न हो, इससे भी अधिक क्षुधा नरक के जीवों को होती है ।

◆ **तृषा वेदना :-** जगत् के सभी समुद्रों को पी जाय तो भी तृषा शांत न हो...उससे भी अधिक तृषा नरक के जीवों को होती है ।

◆ **खुजली की पीड़ा :-** छुरी आदि से खुजलाने पर भी शांत न हो ऐसी खुजली की पीड़ा नरक के जीवों को सतत रहती है ।

◆ **ज्वर :-** मनुष्य को होनेवाले ज्वर से अनंतगुणा ज्वर उन्हें जीवनपर्यंत रहता है ।

◆ **पराधीनता :-** नरक के जीवों को सतत परमाधामी आदि के अधीन रहना पड़ता है ।

◆ **दाह :-** नरक के जीवों के शरीर में भयंकर दाह सदैव रहता है ।

◆ **भय :-** अवधिज्ञान या विभंगज्ञान द्वारा आगामी दुःख को देखने के कारण नरक के जीव सतत भयभीत रहते हैं ।

◆ **शोक :-** दुःख, भय आदि के कारण सतत शोकातुर रहते हैं ।

◆ **अशुभ विक्रिया :-** अशुभ नामकर्म का उदय होने से नरक के जीव जो उत्तर वैक्रिय शरीर बनाते हैं, वह अशुभ ही बनता है ।

पारस्परिक पीड़ा

जिस प्रकार एक मोहल्ले में रहने वाला कुत्ता दूसरे मोहल्ले में चला जाय तो उस मोहल्ले में रहे हुए सभी कुत्ते उस पर एक साथ टूट पड़ते हैं और उसे घायल कर देते हैं, बस, इसी प्रकार नारक जीव भी क्रोधाग्नि से परस्पर लड़ते रहते हैं । वे वैक्रिय रूप करके क्षेत्रप्रभाव से उत्पन्न, पृथ्वी कंप अथवा वैक्रिय भाले, तलवार, बाण तथा हाथ-पैर आदि से परस्पर प्रहार करते रहते हैं । शरीर का छेदन-भेदन होने पर तड़पते रहते हैं ।

हाँ, परस्पर पीड़ा देने का काम मिथ्यादृष्टि नारक जीव ही करते हैं । नरक में जो सम्यग्दृष्टि नारक जीव होते हैं, वे तो अपने अशुभ कर्म का उदय समझ कर दूसरों के द्वारा दी गई पीड़ा को समतापूर्वक सहन करते हैं और कर्मो का क्षय करते हैं, वे नए कर्म नहीं बाँधते हैं, जबकि जो मिथ्यादृष्टि नारक होते हैं वे तो अपने विभंगज्ञान द्वारा अपने पूर्व भव के वैरियों को पहिचान कर उन्हें कष्ट देते रहते हैं, स्वयं कष्ट सहते हैं और नवीन कर्मों का बंध करते रहते हैं ।

परमाधार्मिक कृत पीड़ा

भुवनपति निकाय में 15 परमाधार्मिक देव हैं । ये देव अत्यंत अधर्मी होने से परमाधार्मिक कहलाते हैं । ये अत्यंत पापी और निर्दय होते हैं । पूर्व भव में पंचाग्नि तप आदि के प्रभाव से उन्हें देवलोक की प्राप्ति हुई होती है । ये देवता पहली तीन नरक के नारकों को भयंकर कष्ट देते हैं, कष्ट देने में ही इन्हें अत्यंत आनंद आता है ।

परमाधार्मिक देवता भव्य जीव होते हैं । वे मरकर अंडगोलिक नामक जलमनुष्य बनते हैं । उनके अंडगोलों को लेने के लिए उन्हें पकड़ा जाता है और वज्र की घंटी में छह मास तक पीला जाता है । भयंकर वेदना सहनकर मरकर नरक में जाते हैं और वहाँ पुनः नरक की पीड़ा सहन करते हैं ।

1) अंब :- ये परमाधामी क्रीड़ा द्वारा विविध प्रकार के भय पैदा कर नरक के जीवों को डराते हैं । नारकों को आकाश में उछालते हैं और नीचे गिरते समय वज्रमय भालों से बींधते हैं और मुद्गर से तीव्र प्रहार करते हैं ।

2) अंबर्षि :- ये परमाधामी मूर्च्छित बने नारक जीवों के शरीर के अंगों को काटते हैं और शाक की तरह पकाते हैं ।

3) श्याम :- ये परमाधामी नारक जीवों के अंगों को छेदकर बॉल की तरह उछालते हैं, चाबुक से प्रहार करते हैं और पैरों से रोंदते हैं ।

4) शबल :- ये परमाधामी नारक जीवों के पेट आदि को चीरकर उनकी आँखें आदि बाहर निकालकर उन्हें बताते हैं ।

5) रुद्र :- ये परमाधामी दौड़ते हुए आते हैं, तलवार चलाते हैं, त्रिशूल, वज्र आदि से बींधते हैं और आग में डालते हैं ।

6) उपरुद्र :- ये परमाधामी नारक जीवों के शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके अत्यंत वेदना उत्पन्न करते हैं ।

7) काल :- ये परमाधामी नरक के जीवों को मछलियों की तरह पकाते हैं ।

8) महाकाल :- ये परमाधामी नारक जीवों के शरीर के मांस को काटकर उन्हीं को खिलाते हैं ।

9) असि :- ये परमाधामी तलवार आदि शस्त्रों द्वारा नरक जीवों के हाथ, पैर, मस्तक आदि अंगों को काटकर छिन्न-भिन्न कर देते हैं ।

10) पत्रधनु :- ये परमाधामी असिपत्र वन की रचना करते हैं । छाया के अभिलाषी नारक जीव वहाँ जाते हैं । उस समय ये परमाधामी पवन फूंकते हैं । उस समय वृक्ष पर से पत्ते नीचे गिरते हैं और नारक जीवों के हाथ-पैर आदि को काटते हैं, उनमें से खून बहता है ।

11) कुंभ :- ये परमाधामी नारक जीवों को कुंभ आदि में उबलते हुए तैल में भजीए की तरह पकाते हैं ।

12) वालुका :- ये परमाधामी नारक जीवों को भट्टी की रेती से अनंत-गुणी तपी हुई कदंबवालुका नाम की पृथ्वी में चने की तरह भूंजते हैं ।

13) वैतरणी :- ये परमाधामी वैतरणी नदी की रचना करते हैं, जिसमें उबलते लाक्षारस का तेज प्रवाह बहता है, उसमें चर्बी, खून, हड्डी आदि बहते हैं । इस नदी में उन नारकों को चलाया जाता है और अत्यंत तपी हुई लोहे की नाव में उन नारकों को बिठाते हैं ।

14) खरस्वर :- ये परमाधामी कठोर शब्दों से चिल्लाते हुए आते हैं और नारकों के पास परस्पर चमड़ी उतरवाते हैं और स्वयं नारकों के शरीर

को करवत से चीरते हैं । तीक्ष्ण काँटों से भरपूर शाल्मली वृक्षों के ऊपर नारकों को चढ़ाते हैं ।

15) महाघोष :- ये परमाधामी गगनभेदी आवाज से नारकों को डराते हैं । भय से भागते हुए नारकों को पकड़कर वधस्थान में उन्हें अनेक प्रकार की पीड़ा पहुंचाते हैं । ये परमाधामी नारक जीवों को छेदन-भेदन करके, आग में जलाकर, शिलाओं पर पछाड़कर कष्ट देते हैं, फिर भी वे मरते नहीं हैं, उनके अंगोपांग पुनः जुड़ जाते हैं । मौत को चाहते हुए भी निकाचित आयुष्य का उदय होने के कारण वे प्रहार आदि से मरते नहीं हैं, आयुष्य पूरा होने पर ही मौत होती है ।

नरक आयुष्य का बंध

किसी भी जाति के देवता या नरक के जीव मरकर नरक में नहीं जाते हैं अर्थात् वे आगामी भव का नरक आयुष्य का बंध नहीं करते हैं ।

मिथ्यादृष्टि, महारंभी, महापरिग्रही मांसाहारी, पंचेन्द्रिय प्राणियों का वध करनेवाला, तीव्रक्रोधी, रौद्र परिणामी जीव नरक-आयुष्य का बंध करता है ।

संघयण और नरक

1) वज्रऋषभ नाराच संघयणवाला सातों नरक में जा सकता है ।

2) ऋषभ नाराचवाला छह नरक तक जा सकता है ।

3) नाराच संघयण वाला पाँच नरक तक जा सकता है ।

4) अर्ध नाराच संघयण वाला चौथी नरक तक जा सकता है ।

5) कीलिका संघयण वाला तीसरी नरक तक जा सकता है ।

6) सेवार्त संघयण वाला दूसरी नरक तक जा सकता है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच

जलचर

जलयर-थलयर-खयरा, तिविहा पंचिंदिया तिरिक्खा य ।
सुसुमार-मच्छ-कच्छव, गाहा मगरा य जलचारी ।।20।।

शब्दार्थ :- जलयर=जल में चलनेवाले **थलयर=**स्थल पर चलनेवाले **खयरा=**आकाश में उड़नेवाले **तिविहा=**तीन प्रकार के **पंचिंदिया=**पंचेंद्रिय **तिरिक्खा=**तिर्यंच **य=**तथा **सुसुमार=**मगरमच्छ की जाति **मच्छ=**मत्स्य **कच्छव=**कछुआ **गाहा=**ग्राह **मगरा=**मगरमच्छ **जलचारी=**जलचर प्राणी ।

भावार्थ :- पंचेन्द्रिय तिर्यंच के तीन प्रकार हैं-जलचर, स्थलचर और खेचर । उसमें शिशुमार, मत्स्य, कच्छप, ग्राह और मगर आदि जलचर प्राणी हैं ।

विवेचन :- जो प्राणी तिरछे अथवा टेढ़े-मेढ़े चलते हैं, वे तिर्यंच कहलाते हैं । मनुष्य का मस्तक ऊँचा होता है, जबकि गाय, घोड़े, गधे आदि का सदैव नीचे झुका हुआ होता है ।

देव, मनुष्य और नारक के जीव पंचेंद्रिय ही होते हैं जबकि तिर्यंच एक इन्द्रियवाले, दो इन्द्रियवाले, तीन इन्द्रियवाले, चार इन्द्रियवाले और पाँच इन्द्रियवाले भी होते हैं ।

जीवों में सबसे अधिक विविधता तिर्यंचों में ही पाई जाती है ।

उपर्युक्त गाथा में पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के मुख्य तीन भेद बतलाए हैं ।

पशु-पक्षियों में भी अनेक विशेषताएँ देखने को मिलती हैं । सिंह में पराक्रम है तो हाथी में कायबल और बुद्धि चातुर्य है । घोडे में तीव्र रफ्तार है तो बैल में वजन ढोने की क्षमता है, बंदर में चपलता है तो कुत्ते में वफादारी है ।

वर्तमान वैज्ञानिक कहते हैं कि इस पृथ्वी पर 8000 प्रकार के पशुओं व 8000 प्रकार के पक्षियों की जातियाँ उपलब्ध हैं ।

यहाँ तिर्यंच के मुख्य तीन भेद बतलाए हैं-

1) जलचर :- जो प्राणी मुख्यतया जल में ही रहते हैं अथवा जल में ही गति करते हैं, वे जलचर कहलाते हैं ।

2) स्थलचर :- जो प्राणी पृथ्वी पर चलते हैं, वे स्थलचर कहलाते हैं ।

3) खेचर :- जो प्राणी आकाश में गति करते हैं, वे खेचर कहलाते हैं ।

इस गाथा में जलचर प्राणियों के कुछ नाम बतलाए हैं ।

1) सिंसुमार :- यह एक प्रकार के मगरमच्छ की ही जाति है । यह प्राणी स्थूल आकार का होता है । भैंसे, घोड़े, सिंह व मनुष्य के आकार में भी ये प्राणी पाए जाते हैं ।

2) मत्स्य :- चांदी व सोने की बाह्य कांतिवाले ये मत्स्य अनेक प्रकार के होते हैं । कई मछलियों के शरीर में से बिजली जैसा प्रकाश भी निकलता है ।

कई मत्स्य खूब बलवान भी होते हैं । अपने पिछले भाग के बल से बड़े-बड़े जहाजों को भी उल्टा कर देते हैं ।

स्वयंभूरमण समुद्र में अनेक प्रकार के मत्स्य पाए जाते हैं । जिन-प्रतिमा के आकार के भी मत्स्य होते हैं, जिन्हें देखकर अन्य कई प्राणियों को जातिस्मरण ज्ञान भी हो जाता है और वे सम्यग्दर्शन व देशविरति धर्म भी पा लेते हैं ।

कहते हैं कि चूड़ी और नलिये के आकार को छोड़कर अन्य सभी आकार के मत्स्य स्वयंभूरमण समुद्र में पाए जाते हैं ।

कई अज्ञानी लोग मत्स्यों को सामुद्रिक वनस्पति कहकर, मानकर उनका भक्षण भी करते हैं । परंतु वास्तव में देखा जाय तो मत्स्य पंचेन्द्रिय प्राणी है । उसमें हर प्रकार की संवेदनाएँ होती हैं ।

3) कछुआ :- सामान्यतया कछुआ पानी में रहता है, परंतु कभी-कभी नदी तालाब के तट पर भी आता है । इसके चार पैर व लंबी गर्दन होती है ।

उसके शरीर का Cover अत्यंत ही कठोर होता है । मोटर का पहिया भी उसके ऊपर घूम जाय तो भी उसका बाल भी बाँका नहीं होता है । किसी भी शत्रु को आते देख वह अपनी गर्दन व पाँव को अपने भीतरी भाग में छिपा देता है ।

संयमी महात्मा व इन्द्रिय विजेता को कछुए की उपमा भी दी जाती है ।

4. ग्राह :- जलचर प्राणियों में यह सबसे भयंकर प्राणी होता है । कोई भी प्राणी इसके जाल में फँस जाने के बाद आसानी से बाहर नहीं निकल सकता है । इसे जलराक्षस भी कहते हैं ।

5. मगर :- इसके दाँत अत्यंत ही तीक्ष्ण होते हैं । बड़े बड़े तालाबों व समुद्रों में मगरमच्छ पाए जाते हैं । पानी में इसका बल अधिक होता है ।

स्थलचर

चउपय उरपरिसप्पा, भुयपरिसप्पा य थलयरा तिविहा ।
गो-सप्प-नउल-पमुहा, बोधव्वा ते समासेणं ।।21।।

शब्दार्थ :- चउपय=चारपैरवाले **उरपरिसप्पा=**छाती से चलनेवाले **भुयपरिसप्पा=**भुजाओं से चलनेवाले **थलयरा=**स्थलचर **तिविहा=**तीन प्रकार के **गो=**गाय **सप्प=**साँप **नउल=**नेवला **पमुहा=**प्रमुख **बोधव्वा=**जानने चाहिए **ते=**वे **समासेणं=**संक्षेप में ।

भावार्थ :- स्थलचर के तीन भेद हैं-चतुष्पद, उरपरिसर्प और भुज-परिसर्प ! इनके क्रमशः गाय, साँप और नेवला दृष्टांत संक्षेप में समझने चाहिए ।

विवेचन :- इस गाथा में स्थलचर पंचेंद्रिय तिर्यंचों के तीन भेद बतलाए हैं ।

1) चतुष्पद :- जो अपने चार पैरों से पृथ्वी पर चलते हैं, वे चतुष्पद कहलाते हैं, जैसे-गाय आदि । यहाँ मूल गाथा में गाय का उल्लेख किया है, परंतु आदि पद से भैंस, घोड़ा, गधा, ऊँट, भेड़-बकरी, हाथी, सिंह, बाघ, सियार, कुत्ता, बिल्ली आदि चार पैरों से चलनेवाले सभी प्राणी समझ लेने चाहिए ।

चतुष्पद तिर्यंच भी दो प्रकार के होते हैं-

1. पालतू पशु :- जो पशु मनुष्य की आज्ञा में रहते हैं और मनुष्य के कार्यों में हाथ बंटाते हैं, वे पालतू पशु कहलाते हैं । जैसे-गाय, भैंस, बैल, बकरी आदि ।

2. जंगली पशु :- जो जंगल में रहते हैं । अधिकांशतः मांसाहारी होते हैं । जैसे-सिंह, बाघ, चीता आदि ।

2) उरपरिसर्प :- जिनके पैर नहीं होते हैं, परंतु जो छाती के बल पर रेंगकर चलते हैं वे उरपरिसर्प कहलाते हैं । यहाँ मूल गाथा में साँप का निर्देश किया है, परंतु यहाँ भी आदि पद से अजगर आदि पेट के बल पर चलनेवाले सभी प्राणियों का समावेश समझ लेना चाहिए ।

उरपरिसर्प में साँप की भी कई जातियाँ हैं । कई साँप फणवाले और कई सर्प फण रहित भी होते हैं । कई साँपों की दाढ़ाओं में विष होता है, उन्हें आशीविष सर्प कहते हैं ।

कई साँपों की दृष्टि में जहर होता है, उन्हें दृष्टिविष सर्प कहते हैं । चंडकोशिक साँप दृष्टिविष साँप था, उसकी दृष्टि में ही जहर था ।

कई साँपों का जहर भयंकर होता है, उन्हें उग्रविष सर्प कहते हैं ।

आज के वैज्ञानिक कहते हैं कि साँप की कुल 700 जातियाँ हैं । उनमें कई जहरीले भी हैं और कई जहर रहित भी हैं ।

साँप भी पंचेंद्रिय प्राणी है । कान के स्थान पर शून्य जैसी आकृति होती है । साँप भी मधुर ध्वनि को सुनकर डोलने लगता है ।

साँप के दो जीभ होती हैं ।

साँप सिर्फ पवन के आधार पर भी लंबे समय तक जी सकता है । इसलिए उसे **'पवनभुक्'** भी कहते हैं ।

साँप के पैर नहीं होते हैं, परंतु उसके शरीर में हड्डियों की रचना इस प्रकार होती है कि वह आसानी से कहीं भी वृक्ष आदि के ऊपर चढ़ सकता है ।

अजगर की काया खूब लंबी होती है । 20 से 40 फुट तक की उसकी लंबाई होती है । वह भूरे रंग का होता है और उसके शरीर पर बदामी रंग के धब्बे होते हैं ।

3) भुज परिसर्प :- अपनी भुजाओं के बल से चलनेवाले । यहाँ भुजा शब्द से आगे के दो पाँव ही समझना चाहिए । उन जीवों के पीछे भी दो पाँव होते हैं, परंतु वे उतने विकसित नहीं होते हैं ।

यहाँ उदाहरण के रूप में नेवले का निर्देश किया है । यहाँ भी आदि पद से चूहा, गिलहरी, गिरगिट आदि सभी प्राणियों का समावेश समझ लेना चाहिए ।

नेवला साँप का आजन्मवैरी-दुश्मन कहलाता है । युद्ध में वह साँप को भी हरा देता है ।

चूहा प्रसिद्ध प्राणी है ।

गिरगिट अपने रंग बदलने में होशियार होता है ।

खेचर

खयरा रोमय-पक्खी, चम्मयपक्खी य पायडा चेव ।
नरलोगाओ बाहिं, समुग्गपक्खी वियय-पक्खी ।।22।।

शब्दार्थ :- खयरा=खेचर (पक्षी) **रोमय पक्खी=**रोमज पक्षी **चम्मय पक्खी=**चर्मज पक्षी **पायडा=**प्रगट **चेव=**निश्चय **नरलोगाओ=**मनुष्य लोक से **बाहिं=**बाहर **समुग्गपक्खी=**बंद पंखवाले **वियपक्खी=**खुली पंखवाले ।

भावार्थ :- पक्षी दो प्रकार के हैं 1) रोमज पक्षी और 2) चर्मज पक्षी ! ये दोनों प्रकार प्रसिद्ध हैं । मनुष्य क्षेत्र के बाहर बंद पंखवाले और खुली पंखवाले पक्षी होते हैं ।

विवेचन :- जलचर एवं स्थलचर के वर्णन के बाद अब खेचर का वर्णन करते हैं । पंख से युक्त जिन प्राणियों में उड़ने की शक्ति है, उन्हें खेचर पक्षी कहते हैं ।

यहाँ पंख के आधार पर पक्षियों के दो भेद किए हैं–

(1) रोमजपक्षी :- जिनके पंख रोम से बने होते हैं, उन्हें रोमज पक्षी कहते हैं । इनमें कौआ, कबूतर, चिड़िया, पोपट, कोयल, मोर, मुर्गा, बाज, गरुड़, तीतर, बतख, हंस, सारस आदि पक्षियों का समावेश होता है ।

इनमें से कई पक्षियों के पंख अत्यंत ही सुंदर व आकर्षक होते हैं । कई पक्षी अपने मधुर कंठ से वे सब का मन मोह लेते हैं । कई पक्षी नदी-तालाब के किनारे रहते हैं, तो कई पक्षी जंगल में रहते हैं तो कई पक्षी घोसले में रहना पसंद करते हैं ।

(2) चर्मज पक्षी :- इन पंखियों के पंख चमड़े से बने होते हैं । चिमगादड़, भारंडपक्षी, समुद्रवायस आदि का समावेश इनमें होता है ।

शास्त्र में भारंड पक्षी का वर्णन आता है । यह पक्षी खूब बड़ा होता है । मनुष्य भी उसके पैर पकड़ ले तो वह आसानी से उड़ सकता है । वह पक्षी अत्यंत ही अप्रमत्त होता है । उसमें दो जीव, 1 शरीर, 2 मुँह और 3 पैर होता है । भिन्न इच्छा होने पर उसका मरण होता है ।

मनुष्यलोक के बाहर के पक्षी मनुष्य लोक अर्थात् ढाई-द्वीप के बाहर असंख्य द्वीप और समुद्र आए हुए हैं । वहाँ दो प्रकार के पक्षी पाए जाते हैं ।

(1) समुद्ग पक्षी :- ढाई द्वीप के बाहर कई ऐसे पक्षी भी हैं, जिनके पंख उड़ते समय हमेशा बंद ही होते हैं ।

(2) वितत पक्षी :- ढाई द्वीप के बाहर कई ऐसे भी पक्षी हैं, जिनके पंख बैठते समय हमेशा खुले ही होते हैं ।

तिर्यंच उत्पत्ति व मनुष्य

सव्वे जल थल खयरा, संमूच्छिमा गब्भया दुहा हुंति ।
कम्मा-कम्मग भूमी, अंतरदीवा मणुस्सा य ।।23।।

शब्दार्थ :- सव्वे=सभी **जल-थल-खयरा=**जलचर, स्थलचर और खेचर **संमूच्छिमा=**संमूर्च्छिम **गब्भया=**गर्भज **दुहा=**दो प्रकार के **हुंति=**होते हैं **कम्माकम्मगभूमी=**कर्मभूमि और अकर्मभूमि **अंतरदीवा=**अन्तर्द्वीप **मणुस्सा=**मनुष्य **य=**तथा ।

भावार्थ :- सभी जलचर, स्थलचर और खेचर तिर्यंच, संमूर्च्छिम और गर्भज रूप दो प्रकार के होते हैं ।

मनुष्य के मुख्य तीन प्रकार बताए हैं-कर्मभूमि में उत्पन्न हुए, अकर्मभूमि में उत्पन्न हुए और अन्तर्द्वीप में उत्पन्न हुए ।

विवेचन :- पंचेन्द्रिय तिर्यंच के जो मुख्य 5 भेद बतलाए हैं उन सबकी उत्पत्ति दो प्रकार से होती है । उसका वर्णन करते हुए प्रस्तुत गाथा में कहते हैं कि ये भी जलचर आदि प्राणी संमूर्च्छिम और गर्भज, इन दो प्रकार से उत्पन्न होते हैं ।

(1) संमूर्च्छिम जन्म :- नर-मादा के संयोग बिना, उत्पत्ति के योग्य संयोग प्राप्त होने के साथ ही देह के सर्व अवयवों का जो निर्माण हो जाता है, उसे संमूर्च्छन क्रिया कहते हैं । एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के सभी तिर्यंचों की उत्पत्ति संमूर्च्छिम ही होती है ।

एकेन्द्रिय व द्वीन्द्रिय जीवों को उत्पन्न होने में स्वजाति के मल आदि की भी अपेक्षा नहीं होती है, जबकि त्रीन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय जीव उत्पत्ति के योग्य संयोग मिलने पर स्वजाति के मल, लार, विष्टा आदि में उत्पन्न हो जाते हैं ।

(2) गर्भज :- गर्भ से उत्पन्न हुए जीव गर्भज कहलाते हैं । पुरुष के शुक्र अर्थात् वीर्य और स्त्री के रक्त का जहाँ मिश्रण होता है, उसके स्थान को गर्भ कहते हैं, जो स्त्री के उदर में होता है ।

जलचर आदि तिर्यंचों का जन्म संमूर्च्छिम और गर्भज इन दोनों प्रकारों से होता है ।

ये गर्भज जीव भी तीन प्रकार के होते हैं -

(1) अंडज :- अंडे के रूप में पैदा होनेवाले अंडज कहलाते हैं । कुछ समय तक अंडे का सेवन होने के बाद उसमें से बच्चा पैदा होता है । मुर्गी, चिड़िया आदि का जन्म अंडज कहलाता है ।

(2) जरायुज :- जरायु एक प्रकार का जाल जैसा पदार्थ होता है, जो रक्त आदि से भरा होता है । मनुष्य, गाय, भैंस, बकरी, घोड़ा आदि जीवों का जन्म जरायुज होता है ।

(3) पोतज :- किसी भी प्रकार के आवरण में लिपटे बिना पैदा होते हैं, वे पोतज कहलाते हैं । जैसे-हाथी, खरगोश, नेवला, चूहा आदि । इस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच के कुल 20 भेद हुए ।

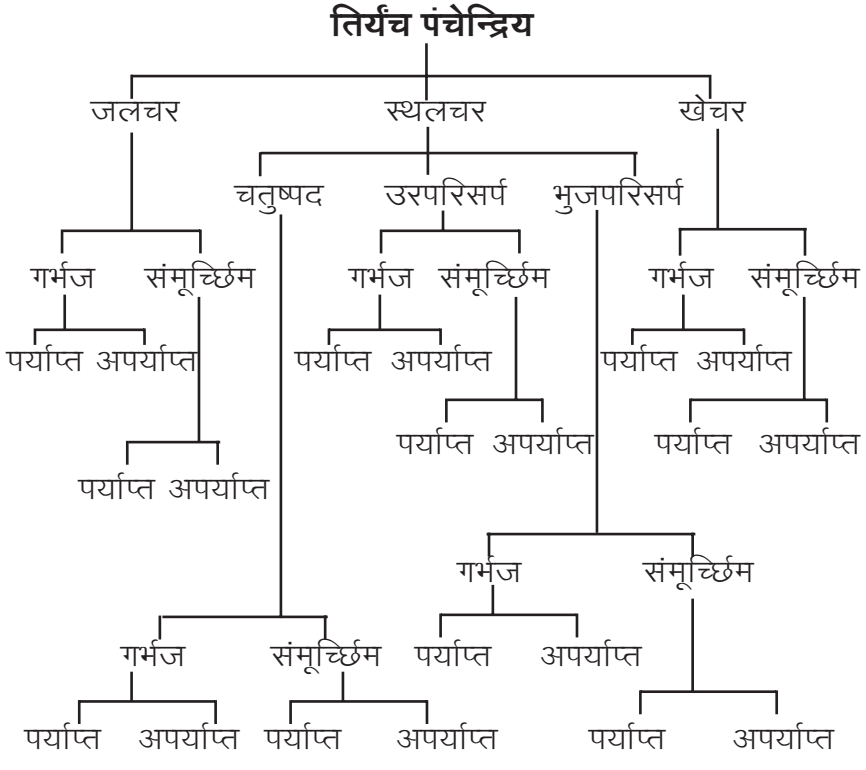

मनुष्य के भेद

1. कर्मभूमि :- जहाँ असि, मषि और कृषि का व्यवहार तथा मोक्षमार्ग के अनुष्ठानरूप श्रुत और चारित्रधर्म की क्रियाएँ होती हैं, उसे कर्मभूमि कहते हैं ।

असि अर्थात् तलवार, अस्त्र-शस्त्र आदि हथियार बनाना और उनका युद्ध और रक्षण हेतु उपयोग करना ।

मषि अर्थात् स्याही बनाना-लेखन आदि की प्रवृत्ति करना ।

कृषि अर्थात् खेती करना, पशु-पालन, धान्य का व्यवसाय करना आदि ।

तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव आदि उत्तम पुरुष इन कर्मभूमियों में ही पैदा होते हैं । जिनमंदिर, जिनप्रतिमा आदि के साधन कर्मभूमि में ही होते हैं । इन्ही क्षेत्र में उत्पन्न मनुष्यों का मोक्ष हो सकता है ।

ढाई द्वीप में ये कर्मभूमियाँ 15 हैं ।

जंबुद्वीप में	1 भरत	1 ऐरावत	1 महाविदेह
धातकी खंड में	2 भरत	2 ऐरावत	2 महाविदेह
अर्ध पुष्कर द्वीप में	2 भरत	2 ऐरावत	2 महाविदेह
	5 भरत	5 ऐरावत	5 महाविदेह

2. अकर्मभूमि :- जहाँ असि, मषि और कृषि का व्यवहार नहीं होता है, जहाँ तीर्थंकर आदि उत्तम पुरुष पैदा नहीं होते हैं । जहाँ मात्र युगलिक ही पैदा होते हैं, उसे अकर्मभूमि कहते है ।

जहाँ तीर्थंकर की उत्पत्ति, तीर्थ, साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका का अभाव होता है । जहाँ उत्पन्न हुई आत्मा का मोक्ष नहीं होता है । जहाँ मनुष्यों को आहार आदि की प्राप्ति कल्पवृक्षों से हो जाती है । अत्यंत सरल व भद्रिक परिणामी होने के कारण वे सभी युगलिक मरकर देवलोक में उत्पन्न होते हैं ।

ढाई द्वीप में कुल 30 अकर्मभूमियाँ हैं ।

	हैमवत	हिरण्यवंत	हरिवर्ष	रम्यक	देवकुरु	उत्तरकुरु
जंबुद्वीप में	1	1	1	1	1	1
धातकी खंड में	2	2	2	2	2	2
अर्ध पुष्करद्वीप में	2	2	2	2	2	2
	5	+ 5	+ 5	+ 5	+ 5	+ 5 = 30

3. अन्तर्द्वीप :- भरत क्षेत्र से उत्तर दिशा में लघु हिमवंत पर्वत है, जो पूर्व-पश्चिम में लवण समुद्र तक फैला हुआ है । इस पर्वत के पूर्व और पश्चिम दिशा में हाथी के दाँत के आकार की दो-दो दाढ़ाएँ लवण समुद्र में रही हुई हैं । इस प्रकार हिमवंत पर्वत की चार दाढ़ाओं पर, प्रत्येक दाढ़ा में 7-7 द्वीप होने से कुल 28 द्वीप होते हैं ।

इसी प्रकार ऐरावत क्षेत्र से दक्षिण दिशा में शिखरी पर्वत है, वह भी

पूर्व और पश्चिम में लवण समुद्र तक फैला हुआ है । इस पर्वत के भी पूर्व और पश्चिम दिशा में कुल 4 दाढ़ाओं पर 7-7 द्वीप आए हुए होने से कुल 28 द्वीप होते हैं ।

इस प्रकार दोनों पर्वतों की दाढ़ाओं पर आए द्वीपों की संख्या 28 + 28 = 56 होती है ।

अन्तर्द्वीपों के नाम

1. एकोरुक 2. अभासिक 3. वैषाणिक 4. लांगुलिक 5. हयकर्ण
6. गजकर्ण 7 गोकर्ण 8 शष्कुलीकर्ण 9. आदर्शमुख 10 मेण्ढ्रमुख
11 अयोमुख 12 गोमुख 13 हयमुख 14 गजमुख 15 हरिमुख
16 व्याघ्रमुख 17 आसकर्ण 18 हरिकर्ण 19 हस्तिकर्ण 20 कर्णप्रावरण
21 उल्कामुख 22 मेघमुख 23 विद्युन्मुख 24 विद्युद्दंत 25 घणदंत
26 लष्टदंत 27 गूढ़दंत 28 सुद्धदंत.

ये 28 नाम हिमवंत पर्वत की दाढ़ाओं पर रहे 28 द्वीपों के हैं । शिखरी पर्वत की दाढ़ाओं पर आए द्वीपों के भी ये ही 28 नाम हैं ।

कर्मभूमि, अकर्मभूमि और अन्तर्द्वीप ढाई द्वीप में आए हुए हैं । मनुष्य ढाई द्वीप में ही पैदा होते हैं और मरते हैं । मनुष्य क्षेत्र का कुल प्रमाण 45 लाख योजन है ।

अकर्मभूमि और अन्तर्द्वीप में जो मनुष्य पैदा होते हैं, वे युगलिक कहलाते हैं । स्त्री-पुरुष के युगल के रूप में पैदा होने से उन्हें युगलिक कहते हैं ।

तीर्थंकर, तीर्थ व शासन का यहाँ अभाव ही होता है ।

15 कर्मभूमि, 30 अकर्मभूमि और 56 अन्तर्द्वीप को जोड़ने पर (15 + 30 + 56) मनुष्य की उत्पत्ति के कुल 101 क्षेत्र होते हैं ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच की भाँति मनुष्य का जन्म भी संमूर्च्छिम और गर्भज दोनों प्रकारों से होता है ।

1. गर्भज मनुष्य : स्त्री-पुरुष के रक्त व वीर्य के संयोग से पैदा होकर, गर्भ में पोषण प्राप्तकर जो गर्भ से पैदा होते हैं, वे गर्भज मनुष्य कहलाते हैं ।

जो गर्भज मनुष्य स्वयोग्य सभी पर्याप्तियों को पूर्ण करके मरते हैं, वे पर्याप्त गर्भज मनुष्य कहलाते हैं और जो गर्भज मनुष्य स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण किए बिना मर जाते हैं, वे अपर्याप्त गर्भज मनुष्य कहलाते हैं ।

2. संमूर्च्छिम मनुष्य :- स्त्री-पुरुष के संयोग बिना गर्भज मनुष्य के मल-मूत्र आदि में उत्पन्न होते हैं और स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण किए बिना ही मर जाते हैं, वे संमूर्च्छिम मनुष्य कहलाते हैं । अतः वे हमेशा अपर्याप्त ही होते हैं । वे अन्तर्मुहूर्त के आयुष्यवाले होते हैं ।

संमूर्च्छिम मनुष्य :- मनुष्य की (1) विष्टा (2) पेशाब (3) कफ (4) नाक के मैल (5) वमन (6) पित्त (7) बिगड़े हुए खून अर्थात् पीप, (8) खून (9) वीर्य (10) अलग हुए वीर्य के पुद्गल (11) मृत शरीर (12) स्त्री पुरुष के समागम (13) नगर की गटर (14) अन्य अशुचिवाले स्थल में पैदा होते हैं ।

पर्याप्त गर्भज मनुष्य के 101 भेद ।

अपर्याप्त गर्भज मनुष्य के 101 भेद ।

अपर्याप्त संमूर्च्छिम मनुष्य के 101 भेद मिलाने पर मनुष्य के कुल 303 भेद होते हैं ।

जंबुद्वीप में सात क्षेत्र

शांति स्नात्र आदि के प्रसंग पर **'अस्मिन् जंबुद्वीपे भरतक्षेत्रे दक्षिणार्ध भरते...**इत्यादि पद बार-बार बोले जाते हैं । तो यह जंबुद्वीप कहाँ आया हुआ है ? इसमें भरत क्षेत्र कहाँ है ? इत्यादि जानकारी प्राप्त करना बहुत जरूरी है ।

तो आइए, जंबुद्वीप एवं इसके भीतर आए हुए भरत क्षेत्र, ऐरवतक्षेत्र, महाविदेह क्षेत्र का परिचय प्राप्त करें ।

भरतक्षेत्र

जंबुद्वीप के दक्षिण की ओर भरत क्षेत्र आया हुआ है । प्रत्यंचा चढ़ाकर तैयार किए धनुष के जैसा इसका आकार है ।

वैज्ञानिकों के द्वारा सिद्ध वर्तमान विश्व, इसी भरतक्षेत्र का एक अंश है ।

जंबुद्वीप के व्यास के 190 भाग किए जाँय तो भरत क्षेत्र का व्यास एक भाग जितना आता है ।

भरतक्षेत्र से हिमवंत पर्वत का व्यास दुगुना है, हेमवंत क्षेत्र का व्यास चार गुना, उसके बाद महा हिमवंत पर्वत का व्यास आठ गुना, हरिवर्ष क्षेत्र का सोलह गुना, निषध पर्वत का बत्तीस गुना व महाविदेह क्षेत्र का चौंसठ गुना है ।

ऐरवत क्षेत्र का व्यास भरत प्रमाण ही है । ऐरवत क्षेत्र उत्तर की ओर आया हुआ है । ऐरवत क्षेत्र से शिखरी पर्वत का व्यास दुगुना, हैरण्यवंत क्षेत्र का व्यास चार गुना, रुक्मि पर्वत का व्यास आठ गुना, रम्यक क्षेत्र का व्यास सोलह गुना, नीलवान पर्वत का व्यास बत्तीस गुना व महाविदेह का व्यास चौंसठ गुना है ।

एक योजन के 19वें भाग को कला तथा 1 कला के 19 वें भाग को विकला कहते हैं ।

भरतक्षेत्र का विष्कंभ 526 धनुष व 6 कला है ।

भरत क्षेत्र के ठीक मध्य में पूर्व-पश्चिम-वैताढ्य पर्वत आया हुआ है, यह वैताढ्य पर्वत भरतक्षेत्र को दो भागों में बाँटता है–

1) दक्षिणार्ध भरत और 2) उत्तरार्ध भरत ।

हिमवंत पर्वत से निकली हुई और वैताढ्य पर्वत को भेद कर पूर्व और पश्चिम समुद्र में मिलने वाली गंगा व सिंधु नदी के कारण भरत क्षेत्र के छह विभाग होते हैं । इन्हें भरतक्षेत्र के छह खंड भी कहते हैं । प्रत्येक चक्रवर्ती इन छह खंडों का तथा वासुदेव तीन खंडों का विजेता होता है ।

दक्षिणार्ध भरत के 25 देश आर्यदेश कहलाते हैं, शेष 5 खंडों के सभी देश अनार्य कहलाते हैं । तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव आदि की उत्पत्ति इस दक्षिणार्ध भरत के मध्य खंड में ही होती है ।

भरतक्षेत्र के मध्य में आए हुए वैताढ्य पर्वत का विस्तार 50 योजन और उसकी ऊँचाई 25 योजन है । यह पर्वत 6 योजन व 1 कोश पृथ्वी के भीतर रहा हुआ है ।

वैताढ्य पर्वत की दक्षिण श्रेणी में 50 व उत्तरश्रेणी में 60 नगर हैं । इन नगरों में विद्याधर मनुष्य रहते हैं ।

वैताढ्य पर्वत के पूर्व किनारे पर खंडप्रपाता और पश्चिम किनारे पर तमिस्रा नाम की गुफा है । ये गुफाएँ सदा काल अंधकारमय होती हैं । ये गुफाएँ आठ योजन ऊँची, बारह योजन चौड़ी और पचास योजन लंबी होती हैं ।

प्रत्येक गुफा की दक्षिण और उत्तर दोनों दिशाओं में दो द्वार होते हैं । प्रत्येक द्वार आठ योजन ऊँचा व चार योजन चौड़ा होता है ।

जब कोई चक्रवर्ती भरतक्षेत्र के उत्तर भाग को जीतने के लिए निकलता

है, तब उसके सेनापति के दंडरत्न के प्रहार से गुफा के किंवाड़ खुल जाते हैं ।

हस्तिरत्न पर आरूढ़ चक्रवर्ती जब गुफा में प्रवेश करता है, तब हस्तिरत्न के कुंभस्थल पर तेजस्वी मणि रखता है, जिससे अंधेरी गुफा प्रकाशित हो जाती है, उसके बाद चक्रवर्ती पीछे आने वाले सैन्य के लिए काकिणी रत्न से गुफा की दीवालों पर मंडलों का आलेखन करता है, जिससे पीछे आनेवाले सैन्य को प्रकाश मिल जाता है ।

गुफा पार करने के बाद उन्मग्नजला और निमग्नजला नाम की नदियाँ आती हैं । वार्धकी रत्न द्वारा नदी पर पुल तैयार कर चक्रवर्ती उन नदियों को पारकर आगे बढ़ता है । वहाँ उत्तर भरतखंड को जीतकर खंडप्रपाता गुफा के पास आता है और पूर्व की तरह गुफा को पारकर आगे बढ़ता है । पुनः निमग्नजला व उन्मग्नजला नदियों को पारकर चक्रवर्ती अपनी राजधानी में प्रवेश करता है ।

ऐरवत क्षेत्र

जंबुद्वीप के शिखरी पर्वत के उत्तर में ऐरवत क्षेत्र आया हुआ है । यह ऐरवत क्षेत्र, भरत क्षेत्र की तरह ही लंबा चौड़ा है । भरतक्षेत्र में सूर्य उगता है, तब यहाँ भी सूर्य उगता है । भरतक्षेत्र में अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी काल में जिस प्रकार छह आरे, तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार ऐरवत क्षेत्र में भी छह आरे चक्रवर्ती आदि पैदा होते हैं ।

ऐरवत क्षेत्र के मध्य में भी वैताढ्य पर्वत है ।

भरत एवं ऐरवत क्षेत्र में काल-व्यवस्था

यद्यपि मेरुपर्वत को प्रदक्षिणा देते हुए सूर्य, चंद्र आदि भरत, ऐरवत और महाविदेह क्षेत्र में समान गति से आते हैं और प्रकाश देते हैं, फिर भी लोक स्थिति ही ऐसी है कि भरत और ऐरवत क्षेत्र में काल के हिसाब से वहाँ उत्पन्न हुए जीवों के आयुष्य, ऊँचाई, शारीरिक-बल, सुख-दुःख आदि में परिवर्तन होता रहता है, तो लंबे समय तक तीर्थंकर के शासन का सर्वथा अभाव रहता है और उस समय मनुष्य युगलिक के रूप में ही पैदा होते हैं । अकर्मभूमि जैसी ही स्थिति होती है । जबकि महाविदेह क्षेत्र में सदैव अवस्थित काल रहता है, वहाँ सदैव अवसर्पिणी काल के चौथे आरे जैसे भाव होते हैं ।

सदाकाल तीर्थंकरों का शासन होने से सदैव मोक्षमार्ग चलता है, वहाँ से जीव मोक्ष में जाते रहते हैं ।

अवसर्पिणी काल के छह आरे

1) सुषमसुषमा आरा :- इसे **पहला आरा** भी कहते हैं । इस आरे का काल चार कोटा कोटि सागरोपम है, इस आरे में मनुष्य की ऊँचाई तीन कोस, आयुष्य तीन पल्योपम होता है ।

मनुष्यों को वज्रऋषभनाराच नामक पहला संघयण और समचतुरस्त्र संस्थान नामक पहला संस्थान होता है । स्त्री-पुरुष युगल रूप में एक साथ पैदा होते हैं । 10 प्रकार के कल्पवृक्षों से उनकी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं । तीन-तीन दिन के बाद उन्हें तृप्ति हो जाती है । आयुष्य छह मास बाकी रहने पर स्त्री एक पुत्र-पुत्री युगल को जन्म देती है । 49 दिन तक उनका पालन-पोषण करती है, फिर वे स्वावलंबी हो जाते हैं । उनके शरीर में 256 पसलियाँ होती हैं । अल्प विषय-कषाय व भद्रिक परिणामी होने से वे मरकर देवलोक में पैदा होते हैं ।

2) सुषम आरा :- इस **दूसरे आरे** का प्रमाण तीन कोटा कोटि सागरोपम है । इस आरे में मनुष्य की ऊँचाई दो कोस तथा आयुष्य दो पल्योपम होता है । शरीर में 128 पसलियाँ होती हैं । उन्हें दो दिन बाद आहार की इच्छा होती है और बोर जितने आहार से तृप्ति हो जाती है । वे पुत्र-पुत्री का पालन 64 दिन करते हैं । मरकर देवगति में उत्पन्न होते हैं ।

पहले आरे की अपेक्षा देह, बुद्धि, बल, कीर्ति आदि में हानि होती है ।

3) सुषम दुषमआरा :- इस **तीसरे आरे** का काल प्रमाण दो कोटाकोटि सागरोपम है । इस आरे में सुख ज्यादा व दुःख थोडा होता है । शरीर की ऊँचाई 1 कोस, आयुष्य 1 पल्योपम, शरीर में 64 पंसलियाँ होती हैं । आहार की इच्छा 1 दिन बाद होती है और आंवले जितने आहार से तृप्ति हो जाती है । पुत्र-पुत्री का पालन 79 दिन होता है ।

तीसरे आरे के 84 लाख पूर्व तीन वर्ष 8½ मास बाकी रहने पर प्रथम तीर्थंकर का जन्म होता है । काल के प्रभाव से कल्पवृक्षों की महिमा धीरे-धीरे नष्ट हो जाती है । बादर अग्नि पैदा होती है । युगलिकों की विनती से प्रथम तीर्थंकर परमात्मा, दीक्षा लेने के पूर्व लोगों को सभी शिल्प व कलाएँ सिखाते हैं । राज्य व्यवस्था, सामाजिक-व्यवस्था, लग्न-व्यवस्था, व्यापार, कृषि

आदि का प्रारंभ होता है । प्रथम चक्रवर्ती इस आरे में पैदा होते हैं । प्रथम तीर्थंकर के निर्वाण के 3 वर्ष 8½ महीने बीतने पर चौथे आरे का प्रारंभ होता है ।

4) दु:षम सुषम आरा :- इस **चौथे आरे** का प्रमाण 42000 वर्ष न्यून 1 कोटा कोटि सागरोपम है । इस आरे में दु:ख ज्यादा व सुख कम होता है । इस आरे में 23 तीर्थंकर 11 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव, 9 प्रति वासुदेव आदि पैदा होते हैं । मनुष्यों का आयुष्य 1 करोड़ पूर्व वर्ष व ऊँचाई 500 धनुष की होती है ।

3 वर्ष 8½ मास बाकी रहने पर चरम तीर्थपति मोक्ष में जाते हैं । तीसरे व चौथे आरे में उत्पन्न मनुष्य ही मोक्ष में जा सकते हैं ।

5) दु:षम आरा :- चरम तीर्थपति के निर्वाण के 3 वर्ष 8½ मास बीतने पर **5वें दु:षम आरे** का प्रारंभ होता है । यह आरा 21000 वर्ष प्रमाण है । इस आरे के प्रारंभ में ऊँचाई 7 हाथ, आयुष्य 125 वर्ष व शरीर में 16 पसलियाँ होती हैं । आहार अनियत होता है ।

इस आरे के प्रभाव से लोगों में काम-क्रोध-लोभ व संघर्ष बढ़ते हैं, शहर जंगल व जंगल शहर बन जाते हैं । बल, बुद्धि, आयुष्य में हानि होती है । सुकुल में आचारहीन व हीनकुलवाले आचारसंपन्न दिखाई देते हैं । विनय मर्यादा की हानि, गुणवानों की निंदा, क्षुद्र जंतुओं की उत्पत्ति, दुष्काल, अतिवृष्टि-अनावृष्टि के उपद्रव, हिंसा की वृद्धि, अनेक मत-मतांतरों की उत्पत्ति, पाखण्डियों का प्रचार होता है । देवी-देवता प्रत्यक्ष नहीं आते हैं, दूध-घी, धान्य, वनस्पति आदि के रसकस में हानि होती है । संयमी को कष्ट पड़ता है, उत्सूत्र प्ररूपणा बढ़ती है, परस्पर प्रेम भाव घटता है । इस प्रकार अनेक प्रकार की विकट परिस्थिति का निर्माण होने से सद्धर्म की आराधना घटती है, मिथ्यात्व का जोर बढ़ता है । दुर्गतिगामी जीव पैदा होते हैं ।

6. दु:षम-दु:षम आरा :- इस **छठे आरे** में दु:ख का प्रमाण अत्यधिक बढ़ जाता है । इस आरे का प्रमाण 21000 वर्ष का है । इस आरे में दिन में भयंकर गर्मी व रात्रि में भयंकर ठंडी पड़ती है । मकान-किले आदि का अभाव होने से लोग वैताढ्य पर्वत के उत्तर व दक्षिण में गंगा व सिंधु नदी के आमने सामने तट पर 36-36 बिलों में रहते हैं । आयुष्य 20 वर्ष, ऊँचाई 1 हाथ रहती है । आहार की इच्छा अमर्यादित रहती है । खाने पर भी तृप्ति नहीं होती है ।

लोग मछली आदि जलचरों को पकड़कर रेती में दबाएंगे, सूर्य के ताप से पकने पर रात्रि में उनका भक्षण करेंगे । परस्पर अत्यंत क्लेश बढ़ेगा । भयंकर कोटि के पाप करेंगे, आयुष्य पूर्ण कर नरक तिर्यंचगति में जाएंगे ।

उत्सर्पिणी काल

अवसर्पिणी काल से ठीक विपरीत भाव उत्सर्पिणी काल में होते हैं । यहाँ पहला आरा दु:षम दु:षम 21000 वर्ष का होता है । दूसरा दु:षम आरा 21000 वर्ष का, तीसरा दु:षम सुषम 42000 वर्ष न्यून 1 कोटाकोटि सागरोपम का, चौथा सुषम दु:षम आरा दो कोटाकोटि सागरोपम, पाँचवाँ सुषम आरा तीन कोटाकोटि सागरोपम का तथा छठा आरा चार कोटाकोटि सागरोपम का होता है ।

इसमें तीसरे व चौथे आरे में तीर्थंकर पैदा होते हैं ।

काल चक्र

एक उत्सर्पिणी और एक अवसर्पिणी मिलकर 20 कोटाकोटि सागरोपम काल को एक कालचक्र कहते हैं । कालचक्र में कुल 48 तीर्थंकर पैदा होते हैं ।

भरत व ऐरवत क्षेत्र में कालचक्र की यह व्यवस्था रहती है । भरत व ऐरवत क्षेत्र में तीर्थंकर व तीर्थंकर के शासन का अस्तित्व एक कालचक्र में सिर्फ दो कोटाकोटि सागरोपम तक ही रहता है, शेष 18 कोटाकोटि सागरोपम तक धर्म व शासन का सर्वथा अभाव रहता है ।

महाविदेह क्षेत्र

सबसे बडा क्षेत्र होने के कारण विदेह क्षेत्र को महाविदेह भी कहते हैं । हम हमेशा सुबह के प्रतिक्रमण में सीमंधर स्वामी परमात्मा का चैत्यवंदन करते हैं । तब स्तवन में...

1) तमे महाविदेह जइ ने कहेजो चांदलिया...।

2) 'आप वस्या जइ क्षेत्र विदेहमां, हुं रहुं भरत मोझार ।'

इत्यादि पद-पंक्तियों के द्वारा हम महाविदेह क्षेत्र को याद करते हैं ।

ये सीमंधर स्वामी आदि चार तीर्थंकर परमात्मा जंबुद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में पृथ्वी तल पर विचर रहे हैं ।

महाविदेह क्षेत्र में हमेशा अवसर्पिणी काल के चौथे आरे जैसे भाव होते हैं ।

तो चलें, हम भी उस महाविदेह क्षेत्र का कुछ परिचय प्राप्त करें ।

नील और निषध पर्वत के बीच में विदेह क्षेत्र आया हुआ है । सबसे बड़ा होने से इसे महाविदेह भी कहते हैं । इस क्षेत्र का विष्कंभ 33684 योजन व चार कला है ।

इस क्षेत्र के मुख्य चार भाग हैं–

1 पूर्व विदेह 2 पश्चिम विदेह 3 उत्तरकुरु और 4 देवकुरु

मेरु से उत्तर का भाग उत्तरकुरु कहलाता है जो गंधमादन और माल्यवान पर्वतों के बीच है ।

मेरु पर्वत के दक्षिण का भाग देवकुरु कहलाता है जो विद्युत्प्रभ और सोमनस नामक गजदंत पर्वत के बीच आया हुआ है ।

मेरु पर्वत से पूर्व दिशा में पूर्व विदेह और पश्चिम दिशा में पश्चिम विदेह है ।

शीता नदी पूर्व विदेह को तथा शीतोदा नदी पश्चिम विदेह को दो भागों में बाँटती है ।

शीता नदी के उत्तर में और दक्षिण में 8-8 विजय हैं ।

शीतोदा नदी के उत्तर व दक्षिण में 8-8 विजय हैं ।

32 विजयों के नाम

1) कच्छ 2) सुकच्छ 3) महाकच्छ 4) कच्छवती 5) आवर्त्त 6) मंगलावर्त 7) पुष्कल 8) पुष्कलावती 9) वत्स 10) सुवत्स 11) महावत्स 12) वत्सावत 13) रम्य 14) रम्यक् 15) रमणीय 16) मंगलावती 17) पक्ष्म 18) सुपक्ष्म 19) महापक्ष्म 20) पक्ष्मावती 21) शंख 22) नलिन 23) कुमुद 24) नलिनावती 25) वप्र 26) सुवप्र 27) महावप्र 28) वप्रावती 29) वल्गु 30) सुवल्गु 31) गंधिल और 32) गंधिलावती ।

कच्छ आदि विजयों की राजधानी-

1) क्षेमा 2) क्षेमपुरी 3) अरिष्टा 4) रिष्टवती 5) खड्गी 6) मंजूषा 7) औषधी 8) पुंडरीकिणी 9) सुसीमा 10) कुंडला 11) अपराजिता 12) प्रभंकरा 13) अंकावती 14) पक्ष्मवती 15) क्षुमा और 16) रत्नसंचया 17) अश्वपुरी

18) सिंहपुरी 19) महाख्या 20) विजया 21) अपराजिता 22) अपराख्या 23) अशोका 24) वीतशोका 25) विजया 26) वैजयंती 27) जयंती 28) अपराजिता 29) चक्रपुरी 30) खड्गपुरी 31) अवंध्या 32) अयोध्या.

इन सभी विजयों में मनुष्य होते हैं, उनकी ऊँचाई उत्कृष्ट 500 धनुष और उत्कृष्ट आयुष्य पूर्व करोड़ वर्ष का होता है । इनके संघयण व संस्थान विविध प्रकार के होते हैं ।

वहाँ हमेशा दुषम सुषम काल के समान सभी भाव होते हैं ।

युगलिक क्षेत्र

इस क्षेत्र में रहे हुए कल्पवृक्ष के फलों का स्वाद चक्रवर्ती के वर्ण-गंध-रस से बने हुए स्वादिष्ट भोजन से भी अनंतगुणा स्वादिष्ट होता है तथा पृथ्वी की जो मिट्टी होती है वह शक्कर से भी अनंतगुण मिठासवाली होती है । वहाँ पर गेहूँ, चावल, अनाज होते हुए अग्नि का अभाव होने से उनका उपयोग नहीं करते हैं । हाथी, सिंह, बाघ वगैरह हिंसक जानवर उत्पन्न होते हैं, परंतु वे मनुष्यों को किसीभी जाति की पीड़ा नहीं करते हैं । घोड़ा, ऊँट वगैरह प्राणी वहाँ पर होते हुए भी मनुष्य उनका उपयोग करते नहीं हैं । इस क्षेत्र में डांस, मच्छर, चींटी, मकोड़ा वगैरह शरीर को पीड़ा करनेवाले जंतु उत्पन्न नहीं होते । मनुष्य को बीमारी आती नहीं है, मात्र खाँसी अथवा छींक आदि आने से आयुष्य पूर्ण हो जाता है । मनुष्य अत्यंत अल्प क्रोध, मान, माया, लोभ सदा संतोषी, सरल तथा नम्रतावाले होने से मरकर देवलोक में उत्पन्न होते हैं । वहाँपर स्वामी-सेवक भाव होता नहीं है ।

देवकुरु क्षेत्र :- देवकुरु नाम का अधिपति देव उस क्षेत्र में रहने से उसे देवकुरु कहते हैं ।

उत्तरकुरु क्षेत्र :- उत्तरकुरु नाम का अधिपति देव उस क्षेत्र में रहने से उसे उत्तरकुरु कहते हैं ।

देवकुरु और उत्तरकुरु

मेरुपर्वत के उत्तर में तथा नील पर्वत के दक्षिण में उत्तरकुरु क्षेत्र है । यह उत्तर-दक्षिण में चौड़ा और पूर्व-पश्चिम में लंबा है । उत्तर-दक्षिण में इसका विस्तार 11842 योजन व दो कला है ।

यहाँ 10 प्रकार के कल्पवृक्ष हैं, जो यहाँ उत्पन्न युगलिकों की

मनोकामनाओं को पूर्ण करते हैं । यहाँ के मनुष्यों की ऊँचाई तीन कोस और आयुष्य तीन पल्योपम होता है, उनके शरीर में 256 पसलियाँ होती हैं । संतान का पालन 49 दिन करते हैं और मरकर देवलोक में उत्पन्न होते हैं । तीन दिन के बाद आहार लेते हैं ।

मेरुपर्वत से दक्षिण में व निषध पर्वत के उत्तर में देवकुरु क्षेत्र आया हुआ है । इसका प्रमाण उत्तरकुरु के समान है । उत्तरकुरु के समान ही यहाँ मनुष्य की ऊँचाई, आयुष्य है ।

हेमवंत क्षेत्र :- हिमवंत और महाहिमवंत पर्वत के बीच में हेमवंतक्षेत्र आया हुआ है । इसके पूर्व और पश्चिम के किनारे लवण समुद्र को स्पर्श किए हुए है ।

इस क्षेत्र का विष्कंभ 2105 योजन 5 कला है । इस क्षेत्र में 56002 नदियाँ हैं । यह भी युगलिक क्षेत्र होने से उन सभी युगलिकों के मनोरथ 10 प्रकार के कल्पवृक्ष पूर्ण करते हैं ।

यहाँ मनुष्यों की ऊँचाई 1 कोस तथा उत्कृष्ट आयुष्य 1 पल्योपम होता है । शरीर में 64 पसलियाँ होती हैं । ये अपनी संतानों का पालन 79 दिन तक करते हैं और मरकर स्वर्ग में जाते हैं । वे एकांतर आँवले जितना आहार लेते हैं । उनका वज्रऋषभ नाराच नामक पहला संघयण होता है । यहाँ सुषमदुषम आरे जैसा काल हमेशा बना रहता है ।

हरिवर्ष क्षेत्र :- महाहिमवंत पर्वत के उत्तर में हरिवर्ष क्षेत्र आया हुआ है । इसका विष्कंभ 8421 योजन 1 कला है । यहाँ 1 लाख 12 हजार 2 नदियाँ बहती हैं ।

इस क्षेत्र में युगलिक मनुष्य पैदा होते हैं इनकी ऊँचाई 2 कोस तथा उत्कृष्ट आयुष्य दो पल्योपम होता है । दो-दो दिन के बाद बोर जितना आहार लेते हैं । उनके शरीर में 128 पसलियाँ होती हैं । वे 64 दिन तक संतति का पालन कर मरकर देवलोक में जाते हैं । यहाँ हमेशा सुषम आरे जैसा काल होता है ।

रम्यक क्षेत्र :- नील पर्वत के उत्तर व शिखरी पर्वत के दक्षिण में रम्यक क्षेत्र आया हुआ है । इसकी लंबाई हरिवर्ष क्षेत्र के समान है ।

मनुष्य की उत्पत्ति, आयुष्य आदि हरिवर्ष क्षेत्र के समान समझने चाहिए ।

हैरण्यवंत क्षेत्र :- रुक्मि पर्वत के उत्तर व शिखरी पर्वत के दक्षिण में हैरण्यवंत क्षेत्र है । इस क्षेत्र का प्रमाण, मनुष्य-तिर्यंचों की ऊँचाई आयुष्य आदि हैमवंत क्षेत्र के समान समझने चाहिए ।

देवों के भेद

दसहा भवणाहिवइ, अट्ठविहा वाणमंतरा हुंति ।
जोइसिया पंचविहा, दुविहा वेमाणिया देवा ।।24।।

शब्दार्थ :- दसहा=दश प्रकार के **भवणाहिवइ=**भवनाधिपति (भवनपति) **अट्ठविहा=**आठ प्रकार के **वाणमंतरा=**वाण व्यंतर **हुंति=**होते हैं **जोइसिया=**ज्योतिष्क **पंचविहा=**पाँच प्रकार के **दुविहा=**दो प्रकार के **वेमाणिया=**वैमानिक **देवा=**देव

भावार्थ :- देवों के मुख्य चार भेद हैं । 1. भवनपति 2. व्यंतर 3. ज्योतिष्क और 4. वैमानिक । उनके क्रमशः दश, आठ, पाँच और दो प्रकार हैं ।

देवों की दिव्य दुनिया

इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर कई उत्तम आत्माओं के चरित्रों का आलेखन हुआ है । मनुष्य भव में जो आत्माएँ संपूर्ण कर्मों का क्षय कर देती हैं, वे आत्माएँ तो देह का त्याग कर सीधी मोक्ष में चली जाती हैं, जहाँ वे आत्माएँ सदा काल के लिए रहती हैं, वे आत्माएँ जन्म जरा मृत्यु आधि व्याधि उपाधि, रोग-शोक-भय आदि से सर्वथा मुक्त हो जाती हैं, परंतु जो आत्माएँ सर्व कर्मों का क्षय नहीं करती हैं, उन आत्माओं को तो पुनः जन्म धारण करना ही पड़ता है ।

इस विराट् विश्व में जो अनंतानंत आत्माएँ हैं, वे जन्म-मरण को धारण करती हुईं देव, मनुष्य, नरक और तिर्यंच इन चार गतियों में भ्रमण करती हैं ।

जो आत्माएँ अत्यधिक पाप करती हैं, वे आत्माएँ मरकर नरक व तिर्यंचगति में जाती हैं ।

जो आत्माएँ अत्यधिक पुण्य करती हैं, वे आत्माएँ मरकर देव व मनुष्य गति में जाती हैं ।

लोकस्थिति ही ऐसी है कि कोई भी देव मरकर पुनः दूसरे ही भव में देव नहीं बनता है और नरक के जीव भी मरकर देवलोक में उत्पन्न नहीं होते हैं । इससे स्पष्ट है कि मनुष्य और तिर्यंच ही मरकर देवलोक में पैदा होते हैं ।

देवगति और मोक्ष में बहुत बड़ा अंतर है । देवगति के देव भी इस संसार में ही हैं । उनके भी जन्म-मरण के चक्कर चालू ही हैं । देवगति के देव भी पूर्ण रूप से सुखी नहीं हैं । राग-द्वेष, लोभ-ईर्ष्या आदि से वे भी दुःखी होते हैं । आयुष्य पूर्ण होने पर उन्हें भी देवलोक की दिव्य दुनिया का त्याग कर मनुष्य या तिर्यंच गति में आना ही पड़ता है ।

इतिहास के पृष्ठों पर अनेक बार पढ़ते हैं कि–

चंडकोशिक मरकर आठवें देवलोक में देव बना ।

नवकार के प्रभाव से जलता हुआ नाग मरकर धरणेन्द्र बना ।

वकचूल मरकर बारहवें देवलोक में देव बना ।

इस प्रकार के हजारों उदाहरण इतिहास के पृष्ठों पर उपलब्ध हैं ।

तो आइए ! उस देवलोक की दुनिया का भी परिचय प्राप्त करें । देवलोक की दुनिया के बोध से हमें दो फायदे हैं–

1) पूर्व के पुण्य के उदय से मनुष्य भव में जो कुछ धन-सुख-संपत्ति मिली है, वह देवलोक की समृद्धि के आगे कुछ भी नहीं है, अतः देवलोक की समृद्धि जान लेने पर मनुष्यलोक की धन-संपत्ति आदि का अभिमान गल जाता है ।

लाख रुपयों को प्राप्त कर व्यक्ति तभी तक अभिमान कर सकता है, जब तक उसके सामने कोई करोडपति या अरबपति आकर खड़ा न हो जाय । करोड़पति को देखते ही लखपति का अभिमान राख में मिल जाता है ।

2) अतुलबली और अमाप संपत्ति के धनी ऐसे देवताओं को भी आयुष्य पूरा हो जाने पर एक दिन सब कुछ छोड़कर मरना पड़ता है और भयंकर गर्भावास आदि की पीड़ा सहन करनी पड़ती है ।

ये देवता मरकर पंचेंद्रिय पशु-पक्षी और पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में भी चले जाते हैं, अतः यह देवलोक भी इच्छनीय नहीं है, इच्छनीय तो एक मात्र मोक्ष ही है, क्योंकि वहाँ जाने के बाद दुःख का लेश भी नहीं है ।

देवलोक की प्राप्ति यह तो पुण्य की लीला है और यह पुण्य कभी भी धोखा दे सकता है । अतः देवलोक की प्राप्ति भी हमारे जीवन का लक्ष्य नहीं होना चाहिए !

यद्यपि सभी देवता पंचेन्द्रिय कहलाते हैं, परंतु उनका जन्म मनुष्य या पंचेन्द्रिय तिर्यंच की तरह गर्भ से नहीं होता है, पुण्य के उदय से उन्हें गर्भ की पीड़ा नहीं सहनी पड़ती है ।

देवलोक में कुछ स्थलों में विशिष्ट शय्याएँ होती हैं, जिनमें देव अपने शरीर की ऊँचाई, कांति व युवावस्था के साथ ही जन्म लेते हैं । देवताओं को बाल्यकाल बचपन नहीं होता है, वे सदैव युवावस्था में ही रहते हैं ।

देवशय्या में देवताओं के इस जन्म को **'उपपात'** कहते हैं । एक अन्तर्मुहूर्त में ही देवताओं का शरीर तैयार हो जाता है ।

वृद्धावस्था के कारण जिस प्रकार मनुष्य का शरीर शिथिल और कमजोर हो जाता है, ऐसी वृद्धावस्था देवताओं को नहीं होती है ।

मनुष्य और तिर्यंचों का शरीर औदारिक वर्गणा के पुद्गलों से बना होता है । मानव देह में हड्डी, मांस, खून, चर्बी आदि अशुचिकारक पदार्थ होते हैं, मानव देह की उत्पत्ति भी अशुचि में ही होती है, जबकि देवताओं का शरीर वैक्रिय वर्गणा के पुद्गलों से बना होता है । औदारिक वर्गणा के पुद्गलों की अपेक्षा वैक्रिय वर्गणा के पुद्गल अत्यंत शुभ और सूक्ष्म होते हैं ।

देवताओं के शरीर में किसी प्रकार की अशुचि, मल-मूत्र, मांस-चर्बी, हड्डी आदि नहीं होते हैं ।

मानव देह के साथ ज्वर, खांसी, सिरदर्द, पेट का दर्द, सर्दी, जुखाम, टी.बी. डायाबिटीस, कैंसर, एड्स आदि अनेक प्रकार की बीमारियाँ जुड़ी हुई हैं जबकि देवताओं के शरीर में किसी प्रकार के शारीरिक रोग नहीं होते हैं ।

मनुष्य को रोग-निवारण के लिए हॉस्पिटल में जाना पड़ता है, यहाँ अनेक दर्दों के निवारण के लिए अनेक प्रकार की हॉस्पिटलें हैं, देवलोक में रोग का ही अभाव होने से किसी भी प्रकार की हॉस्पिटलें नहीं हैं । सामान्य मानव के आयुष्य पर किसी भी समय उपघात लग सकता है, क्योंकि उनका आयुष्य सोपघाती होता है, हाँ, तीर्थंकर, गणधर, चरम शरीरी आदि मनुष्यों का आयुष्य निरुपघाती होने से उनके आयुष्य पर किसी भी प्रकार का उपघात नहीं लगता है ।

देवताओं का आयुष्य तो निरुपघाती ही होता है अर्थात् वे अपने आयुष्य का पूर्ण उपयोग करते हैं, उनकी अकाल-मृत्यु नहीं होती है ।

सभी जीवों में आहार के मुख्य तीन भेद हैं-

1) ओजाहार 2) लोमाहार और 3) कवलाहार

1) उत्पत्ति के प्रथम समय से शरीर पर्याप्ति की पूर्णता तक ग्रहण किए जा रहे पुद्गलों के आहार को **ओजाहार** कहते हैं ।

2) शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने पर स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा जो पुद्गलों का आहार लेते हैं, उसे **लोमाहार** कहते हैं ।

3) मुख के द्वारा कवल से जो आहार लेते हैं, उसे **कवलाहार** कहते हैं ।

देवताओं को कवलाहार नहीं होता है ।

सर्व से जघन्य स्थितिवाले देवताओं को आहार की इच्छा एकांतर होती है ।

पल्योपम की स्थिति वाले देवताओं को 2 से 9 दिन के बाद आहार की इच्छा होती है ।

जितने सागरोपम की स्थिति होती है, उतने हजार वर्ष के बाद आहार की इच्छा होती है ।

प्रश्न :- देवता किस प्रकार आहार लेते हैं ?

उत्तर :- देवताओं के आहार संबंधी उपर्युक्त समय-निर्देश लोमाहार संबंधी हैं ।

लोमाहार के दो प्रकार हैं 1) आभोग और 2) अनाभोग । इरादे पूर्वक जो लोमाहार लिया जाता है, उसे आभोग लोमाहार कहते हैं और बिना इरादे के ही जो प्रतिसमय लोमाहार होता है, उसे अनाभोग लोमाहार कहते हैं ।

यहाँ देवताओं के आहार का अन्तर आभोग लोमाहार की अपेक्षा समझना चाहिए ।

देवताओं को जब आहार की इच्छा होती है तब उनके पुण्योदय से मन से कल्पित आहार के शुभ पुद्गल स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा शरीर रूप में परिणत हो जाते हैं और उस समय मन में तृप्ति व आह्लाद का अनुभव होता है ।

श्वासोच्छ्वास :-

1) जघन्य स्थितिवाले देवता 7-7 स्तोक के बाद एक बार श्वास लेते हैं ।

2) पल्योपम की स्थितिवाले देवता दिन में 1 बार श्वास लेते हैं ।

3) जितने सागरोपम की स्थिति होती है, वे देवता उतने पक्ष के बाद श्वास लेते हैं ।

देवताओं के काम-भोग—

देवताओं में स्त्री-पुरुष अर्थात् देव-देवी होते हैं, नपुंसक नहीं ।

देवियों की उत्पत्ति भी भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और सौधर्म व ईशान प्रथम दो वैमानिक देवलोक तक ही है ।

भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और प्रथम दो वैमानिक देवलोक के देव, मनुष्यों की तरह देवियों से काम-भोग करते हैं ।

तीसरे व चौथे देवलोक के देवता स्पर्श (देवियों के विविध अंगों के स्पर्श) से कामसेवन करते हैं ।

पाँचवें व छठे देवलोक के देवता देवियों के रूपदर्शन से कामसेवन करते हैं ।

सातवें-आठवें देवलोक के देवता, देवियों के मधुर संगीत मृदुहास्य आदि के श्रवण से कामसेवन करते हैं ।

नौवें-दसवें-ग्यारहवें तथा बारहवें देवलोक के देवता देवी का मन से संकल्प कर काम-सेवन करते हैं ।

नौ ग्रैवेयक व पाँच अनुत्तर के देवता मैथुन-सेवन नहीं करते हैं ।

तीसरे आदि देवलोक में देवियाँ नहीं होती हैं, परंतु उन देवलोक के देवताओं के संकल्प मात्र से, दैवी शक्ति से वे देवियाँ स्वयं ही उन देवताओं के पास पहुँच जाती हैं और उनकी इच्छाओं को पूर्ण करती हैं ।

सौधर्म व ईशान देवलोक में दो-दो प्रकार की देवियाँ होती हैं–

1) परिगृहीता :- किसी देव की पत्नी रूप में रही हुई देवी परिगृहीता कहलाती है ।

2) अपरिगृहीता :- सर्व सामान्य देव के उपभोग में आनेवाली देवी अपरिगृहीता कहलाती है ।

वेदना :- देवताओं को लगभग शाता वेदनीय का ही उदय होता है, बीच-बीच में अशाता का भी उदय होता है । सतत शाता का उदय छह मास तक रहता है, फिर अशाता का उदय होता है, जो उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त तक रहता है । फिर पुनः शाता का उदय चालू हो जाता है ।

देवलोक में उपपात–

1) अन्य तीर्थिकी 12वें देवलोक तक उत्पन्न हो सकते हैं ।

2) मिथ्यादृष्टि संयत 9वें ग्रैवेयक तक उत्पन्न हो सकते हैं ।

3) सम्यग्दृष्टि साधु वैमानिक देव से लेकर सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हो सकते हैं ।

4) चौदहपूर्वी 5वें ब्रह्म देवलोक से सर्वार्थसिद्ध में उत्पन्न हो सकते हैं ।

5) पंचेंद्रिय तिर्यंच मरकर 8 वें देवलोक में पैदा हो सकते हैं ।

देवताओं के विमान—

देवताओं के विमान लोकस्थिति से ही आकाश में बिना किसी आधार के रहे हुए हैं ।

तीर्थंकर के जन्माभिषेक, केवलज्ञान, निर्वाण आदि के प्रसंग पर इन्द्रों के आसन स्वतः ही कंपित होते हैं ।

देवों के चार भेद

देवों के मुख्य चार भेद हैं 1) भवनपति 2) व्यंतर 3) ज्योतिष और वैमानिक ।

भवनपति

रत्नप्रभा पृथ्वी जो 1 लाख 80 हजार योजन मोटी है, उस पृथ्वी के ऊपर नीचे 1-1 हजार योजन छोड़, शेष 1,78,000 योजन पृथ्वी में भवनपति देवता रहते हैं ।

भवनपति निकाय के अधिकांश देव भवनों में रहते हैं, इस कारण उन्हें भवनपति कहते हैं । कुमार की तरह कांतदर्शनवाले, मृदु, ललित गतिवाले और क्रीड़ा में तत्पर होने से कुमार कहलाते हैं ।

असुरकुमार देव अधिकांशतः आवास में रहते हैं, कभी-कभी भवनों में भी रहते हैं, जबकि नागकुमार आदि नौ प्रकार के देव प्रायः भवनों में ही रहते हैं ।

आवास देहप्रमाण और सम चौरस होते हैं । चारों ओर से खुले होने से आवास मंडप जैसे लगते हैं, जबकि भवन बाहर से गोल व अंदर से समचौरस होते हैं ।

भवनों के तल भाग पुष्पकर्णिका के आकार के होते हैं । भवनों का विस्तार जघन्य से जंबुद्वीप प्रमाण और उत्कृष्ट से असंख्य योजन प्रमाण होता है ।

	निकाय	मुकुट में चिह्न	शरीरवर्ण	दक्षिण में भवन	उत्तर में भवन
1	असुरकुमार	चूड़ामणि	श्याम	34 लाख	30 लाख
2	नागकुमार	सर्पफणा	गौर	44 लाख	40 लाख
3	विद्युत्कुमार	वज्र	रक्त	38 लाख	34 लाख
4	सुवर्णकुमार	गरुड	पीत	40 लाख	36 लाख
5	अग्निकुमार	कलश	रक्त	40 लाख	36 लाख
6	वायुकुमार	मगर	हरा	40 लाख	36 लाख
7	स्तनितकुमार	शराव संपुट	पीला	40 लाख	36 लाख
8	उदधिकुमार	अश्व	गौर	40 लाख	36 लाख
9	द्वीपकुमार	सिंह	रक्त	50 लाख	46 लाख
10	दिक्कुमार	हाथी	पीला	40 लाख	36 लाख

उपर्युक्त 10 प्रकार के भवनपति देव हैं, उनमें प्रत्येक में दो दो इन्द्र होते हैं ।

दक्षिण दिशा के असुरकुमारों का स्वामी चमरेन्द्र है ।

वर्तमान में जो चमरेन्द्र है, वह पूर्वभव में पूरण नाम का तापस था । 12 वर्ष तक दुष्कर तप कर अंत में 1 मास का पादपोपगमन अनशन कर चमरेन्द्र बना । अपनी उत्पत्ति के बाद ज्ञानचक्षु द्वारा उसने अपने ऊपर रहे हुए सौधर्म इन्द्र को देखा, `मेरे ऊपर यह कौन है ?' इस प्रकार विचार कर उत्तर वैक्रिय रूप कर अपने परिघ नामक शस्त्र को साथ में लेकर सौधर्म सभा में जाकर सौधर्म इन्द्र को ललकारने लगा । चमरेन्द्र की इस बालिश चेष्टा को देख सौधर्म इन्द्र ने गुस्से में आकर उसके पीछे वज्र छोड़ा । वज्र को देख चमरेन्द्र डर गया और अपने रक्षण के लिए वीरप्रभु के दो चरणों के बीच घुस गया ।

शक्रेन्द्र ने जब चमरेन्द्र को प्रभु की शरण स्वीकारते हुए देखा, तभी चार अंगुल के अंतर में रहे वज्र का शक्रेन्द्र ने संहरण कर लिया ।

चमरेन्द्र द्वारा सौधर्म देवलोक में जाकर सौधर्म इन्द्र से लड़ने की घटना अनंतकाल में एक आश्चर्य ही समझना चाहिए ।

इस चमरेन्द्र के 64000 सामानिक देव व 33 त्रायस्त्रिंशक देव होते हैं ।

चमरेन्द्र की तीन पर्षदाएँ होती हैं-

1) **अभ्यंतर पर्षदा :-** इसमें 2½ पल्योपम के आयुष्यवाले 24000 देव और 1½ पल्योपम के आयुष्यवाली 250 देवियाँ होती हैं ।

2) **मध्यम पर्षदा :-** इसमें दो पल्योपम के आयुष्यवाले 28000 देव और एक पल्योपम के आयुष्यवाली 300 देवियाँ होती हैं ।

3) **बाह्य पर्षदा :-** इसमें 1½ पल्योपम के आयुष्यवाले 32000 देव और 1/2 पल्योपम के आयुष्यवाली 350 देवियाँ होती हैं ।

चमरेन्द्र के 5 अग्रमहिषियाँ होती हैं ।

चमरेन्द्र के 4 लोकपाल होते हैं ।

चमरेन्द्र के 7 सैन्य व 7 सेनाधिपति होते हैं ।

चमरेन्द्र के चारों दिशाओं में 64000 आत्मरक्षक देव होते हैं ।

1) असुरकुमार के उत्तर दिशा का स्वामी बलीन्द्र है ।

इस बलीन्द्र के 60000 सामानिक देव और 33 त्रायस्त्रिंशक देव हैं ।

बलीन्द्र के भी चार लोकपाल, 5 अग्र महिषी, 7 सेना व 7 सेनाधिपति आदि चमरेन्द्र की तरह विशाल समृद्धि है ।

असुरकुमार देवों का देह प्रमाण उत्कृष्ट से 7 हाथ होता है । उत्कृष्ट से उत्तर वैक्रिय शरीर 1 लाख योजन प्रमाण है । दक्षिण दिशा के देवों का आयुष्य 1 सागरोपम व उत्तर दिशा के देवों का आयुष्य 1 सागरोपम से कुछ अधिक है ।

2) नागकुमार के दक्षिण दिशा का इन्द्र `धरणेन्द्र' है ।

वर्तमान में जो धरणेन्द्र है, वह पूर्व भव में साँप था । कमठ तापस पंचाग्नि तप कर रहा था, उस काष्ठ में वह साँप जल रहा था, तभी पार्श्वकुमार ने उस साँप को बाहर निकलवाया और उसे नवकार सुनाया । नवकार के प्रभाव से ही वह साँप मरकर धरणेन्द्र बना है ।

इसी धरणेन्द्र ने पार्श्व प्रभु पर मेघमाली के उपसर्ग को दूर किया था ।

इस धरणेन्द्र के तीन पर्षदाएँ हैं, जिनमें 60000, 70000 और 80000 देव है ।

धरणेन्द्र के छह पटरानी हैं । उसके भी आत्मरक्षक देव, सेना, सेनापति आदि विशाल परिवार है ।

नागकुमार के उत्तर दिशा का इन्द्र भूतानंद है ।

भूतानंद इन्द्र के भी तीन पर्षदाएँ हैं, जिनमें 50000, 60000 और 70000 देव हैं । तीन पर्षदाओं में 225, 200 व 100 देवियाँ हैं ।

भूतानंद इन्द्र के 6000 सामानिक देव, सेना, सेनापति व चारों दिशाओं में 6-6 हजार आत्मरक्षक देव हैं ।

आगे के आठ दक्षिण दिशा के इन्द्रों के सामानिक देव, पर्षदा देव-देवी की संख्या, लोकपाल, सैन्य, सेनापति आदि परिवार धरणेन्द्र के परिवार के समान समझना चाहिए ।

इसी प्रकार उत्तर दिशा के आठ इन्द्रों की सभी स्थिति भूतानंद इन्द्र के समान समझनी चाहिए ।

3) सुपर्णकुमार के दक्षिण व उत्तर दिशा के इन्द्र का नाम वेणुदेव और वेणुदारी है ।

4) विद्युतकुमार के दक्षिण-उत्तर इन्द्रों के नाम हरिकांत और हरिस्सह हैं ।

5) अग्निकुमार के दक्षिण व उत्तर दिशा के इन्द्रों के नाम अग्निशिख व अग्निमाणव हैं ।

6) द्वीपकुमार के दक्षिण व उत्तर दिशा के इन्द्रों के नाम पूर्ण और वसिष्ठ हैं ।

7) उदधिकुमार के दक्षिण व उत्तर दिशा के इन्द्रों के नाम जलकांत और जलप्रभ हैं ।

8) दिग्कुमार के दक्षिण व उत्तर दिशा के इन्द्रों के नाम अमितगति और अमितवाहन हैं ।

9) वायुकुमार के दक्षिण व उत्तर दिशा के इन्द्रों के नाम वेलंब और प्रभंजन हैं ।

10) स्तनित कुमार के दक्षिण व उत्तर दिशा के इन्द्रों के नाम घोष और महाघोष हैं ।

उपपात

संमूर्च्छिम और गर्भज तिर्यंच, छह संघयणवाले गर्भज मनुष्य, मिथ्यात्वी अज्ञानतप करनेवाले और द्वैपायन ऋषि की तरह अत्यंत क्रोधी, तप का गर्व करनेवाले अरिहंत शासन की विराधना के बाद उन निकायों में उत्पन्न होते हैं ।

यहाँ से च्यवकर संख्यात स्थितिवाले गर्भज मनुष्य, गर्भज तिर्यंच, पर्याप्त बादर पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में पैदा होते हैं ।

इन देवों को कृष्ण, नील, तेजो और कापोत ये चार लेश्याएँ होती हैं ।

15 प्रकार के परमाधामी भी भवनपति निकाय में ही आते हैं । 15 परमाधामियों के नाम–

1) अंब 2) अंबरीष 3) श्याम 4) शबल 5) रुद्र 6) उपरुद्र 7) काल 8) महाकाल 9) असि 10) असिपत्रवन 11) कुंभी 12) वालुका 13) खरस्वर 14) वैतरणी 15) महाघोष ।

व्यंतर निकाय

रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के 1000 योजन में से ऊपर-नीचे 100-100 योजन छोड़ने पर 800 योजन का जो अंतर रहता है, उसमें आठ प्रकार के व्यंतर निकाय के देव रहते हैं । तथा ऊपर से 100 योजन छोड़े गए हैं, उस 100 योजन में से ऊपर-नीचे 10-10 योजन छोड़ने पर जो 80 योजन का अंतर रहता है, उसमें 8 प्रकार के वाण व्यंतर निकाय के देव रहते हैं ।

ये व्यंतर निकाय के देव ऊपर, नीचे और तिर्च्छा लोक में भवन, शहर और आवासों में रहते हैं ।

अन्य-अन्य पर्वत गुफा, जंगल व द्वीपों में भी रहते हैं, विविध अंतर वाले होने से उनका व्यंतर नाम रूढ़ हुआ है ।

आठ व्यंतर

1) **किन्नर** :- इसके किन्नर, किंपुरुष आदि 10 भेद हैं ।
2) **किंपुरुष** :- इसके पुरुष आदि 10 भेद हैं ।
3) **महोरग** :- इसके भुजग आदि 10 भेद हैं ।
4) **गांधर्व** :- इसके हाहा आदि 12 भेद हैं ।
5) **यक्ष** :- इसके पूर्णभद्र आदि 13 भेद हैं ।
6) **राक्षस** :- इसके भीम आदि 7 भेद हैं ।
7) **भूत** :- इसके सुरूप आदि 9 भेद हैं ।
8) **पिशाच** :- इसके कुष्मांड आदि 15 भेद हैं ।

आठ वाण व्यंतर

1) अणपन्नी 2) पणपन्नी 3) इसीवादी 4) भूतवादी
5) कंदित 6) महाकंदित 7) कोहंड 8) पतंग

दस तिर्यक्जृंभक

1) अन्नजृंभक 2) पानजृंभक 3) वस्त्रजृंभक 4) लेणजृंभक 5) पुष्पजृंभक 6) फलजृंभक 7) पुष्पफल जृंभक 8) शयनजृंभक 9) विद्याजृंभक 10) अवियत्त जृंभक । ये तिर्यक्जृंभक देवता तीर्थंकर के च्यवन, जन्म आदि के समय में धन-धान्य आदि से उनके घर को समृद्ध करते है ।

ज्योतिष निकाय

ज्योतिष निकाय के सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र और तारा ये पाँच भेद हैं ।
समभूतला पृथ्वी से 790 योजन की ऊँचाई पर तारे आए हुए हैं ।
तारों से 10 योजन ऊपर सूर्य का विमान है ।
सूर्य से 80 योजन ऊपर चंद्र का विमान है ।
चंद्र से 4 योजन ऊपर नक्षत्रों के विमान हैं ।
नक्षत्रों से 4 योजन ऊपर बुधग्रह का विमान है ।
बुध से 3 योजन ऊपर शुक्र का विमान है ।
शुक्र से 3 योजन ऊपर गुरु का विमान है ।

गुरु से 3 योजन ऊपर मंगल का विमान है ।

मंगल से 3 योजन ऊपर शनि का विमान है ।

इस प्रकार संपूर्ण ज्योतिष चक्र ऊँचाई में 110 योजन और लंबाई में असंख्य द्वीप समुद्र-प्रमाण है । सूर्य आदि देव उनके विमान ज्योतिष-प्रकाशमान होने से उन्हें ज्योतिष्क कहा जाता है ।

सूर्य आदि देवों के मुकुट में सूर्य आदि के प्रभामंडल का चिह्न होता है ।

परिभ्रमण

पाँचों प्रकार के ज्योतिष्क विमान मनुष्यलोक-ढाईद्वीप में मेरुपर्वत के चारों ओर प्रदक्षिणा आकार में 1121 योजन दूर रहकर घूमते हैं ।

मनुष्यलोक में संख्या

जंबुद्वीप में 2, लवण समुद्र में 4, धातकीखंड में 12, कालोदधि समुद्र में 42 तथा पुष्करार्ध में 72 सूर्य और चंद्र हैं । इस प्रकार ढाई द्वीप में 132 सूर्य और 132 चंद्र हैं ।

ग्रह, नक्षत्र और तारा चंद्र का ही परिवार है और जो चंद्र का परिवार है, वही सूर्य का भी परिवार है । सूर्य का अलग परिवार नहीं है ।

1 चंद्र का परिवार 88 ग्रह, 28 नक्षत्र और 66975 कोड़ाकोड़ी तारा हैं ।

द्वीप-समुद्र	ग्रह	नक्षत्र	तारा
जंबुद्वीप	176	56	133950 कोड़ाकोड़ी
लवणसमुद्र	352	112	267900 कोड़ाकोड़ी
धातकीखंड	1056	336	803700 कोड़ाकोड़ी
कालोदधि	3696	1176	2812950 कोड़ाकोड़ी
पुष्करार्ध	6336	2013	4822200 कोड़ाकोड़ी

मनुष्यलोक में सूर्य आदि के ये विमान सदैव घूमते रहते हैं । चंद्र आदि से सबकी गति क्रमशः अधिक-अधिक है । चंद्र की गति सबसे कम है, उससे अधिक सूर्य की गति है । सूर्य से ग्रह की गति अधिक है, ग्रह से नक्षत्र की गति अधिक है और नक्षत्र से तारों की गति अधिक है ।

तारों की ऋद्धि सबसे कम है, तारों से नक्षत्र की ऋद्धि अधिक है । नक्षत्र से ग्रह की ऋद्धि अधिक है । ग्रह से सूर्य की ऋद्धि अधिक है और सूर्य से चंद्र की ऋद्धि अधिक है ।

सूर्य आदि की गति के कारण ही कालविभाग का व्यवहार चलता है । काल के अविभाज्य अंश को समय कहते हैं । असंख्य समय की 1 आवलिका होती है ।

अवस्थित सूर्य-चंद्र

मनुष्यलोक के बाहर असंख्य सूर्य-चंद्र आदि के विमान हैं, परंतु वे सब स्थिर हैं ।

सूर्य-चंद्र आदि स्थिर होने से जिस क्षेत्र में सूर्य आदि का प्रकाश नहीं पहुँचता है, उस क्षेत्र में सदा काल अंधेरा ही रहता है ।

मनुष्यलोक के बाहर के सूर्य-चंद्र के विमानों का प्रकाश समशीतोष्ण होता है अर्थात् सूर्य की किरणें अतितीक्ष्ण नहीं होती हैं और चंद्र की किरणें अतिशीतल नहीं होती हैं ।

वैमानिक देव

विमान में उत्पन्न होने के कारण इन्हें वैमानिक कहते हैं । वैमानिक देवों के मुख्य दो भेद हैं-

1) कल्पोपपन्न और 2) कल्पातीत ।

जहाँ छोटे-बड़े की मर्यादा है, उस देवलोक को **कल्प** कहते हैं । कल्प में उत्पन्न हुए देवताओं को **कल्पोपपन्न** और जहाँ कल्प नहीं हैं, ऐसे देवलोक में उत्पन्न हुए देवताओं को **कल्पातीत** कहते हैं ।

12 देवलोक में कल्प होने से उन्हें कल्पोपपन्न कहते हैं । उसके बाद 9 ग्रैवेयक और 5 अनुत्तर में कल्प का अभाव होने से उन देवताओं को कल्पातीत कहते हैं ।

ज्योतिष चक्र से ऊपर असंख्य योजन जाने पर मेरु के दक्षिण भाग में सौधर्म और उत्तर भाग में ईशान कल्प आया हुआ है । ईशान देवलोक कुछ ऊपर है-दोनों समश्रेणि में नहीं हैं ।

सौधर्म से असंख्य योजन ऊपर समश्रेणि में सनतकुमार का कल्प है । ईशान से असंख्य योजन ऊपर समश्रेणि में माहेन्द्र कल्प है ।

सनतकुमार व माहेन्द्र के बीच में ऊपर ब्रह्मलोक है । उसके ऊपर-ऊपर क्रमशः लांतक, महाशुक्र और सहस्त्रार देवलोक है ।

उसके ऊपर सौधर्म-ईशान की तरह आनत और प्राणत दो कल्प आए हुए हैं और उसके ऊपर आरण और अच्युत आए हुए हैं ।

सौधर्म ईशान देवलोक में विमान पूर्व-पश्चिम में लंबे व उत्तर दक्षिण में चौड़े असंख्य कोड़ाकोड़ी योजन प्रमाण हैं । इन दोनों देवलोक में 13-13 प्रतर हैं । प्रत्येक प्रतर के बीच में इन्द्रक विमान हैं ।

तीसरे चौथे देवलोक में 12-12 प्रतर हैं ।

पाँचवें देवलोक में 6 प्रतर हैं ।

छठे देवलोक में 5 प्रतर हैं ।

सातवें-आठवें देवलोक में 4-4 प्रतर हैं ।

नौवें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें देवलोक में 4-4 प्रतर हैं ।

नौ ग्रैवेयक के 9 प्रतर तथा अनुत्तर विमान का 1 प्रतर है ।

इस प्रकार ऊर्ध्व लोक में वैमानिक देवताओं के कुल 62 प्रतर हैं ।

सौधर्म और ईशान देवलोक में 965 गोलविमान 988 त्रिकोण विमान, 972 चौरसविमान हैं । पुष्पावकीर्ण विमानों की संख्या 59,97,075 है । इस प्रकार दोनों देवलोक में कुल 60 लाख विमान हैं, जिनमें से 32 लाख सौधर्म देवलोक के और 28 लाख ईशान देवलोक के हैं ।

इन सभी विमानों की पृथ्वी लोकस्वभाव से ही घनोदधि पर रही हुई है ।

रत्नमय इन विमानों में सदैव प्रकाश ही रहता है, कहीं भी अंधेरा नहीं होता है । वहाँ अहोरात्रि की व्यवस्था नहीं है ।

विमान के चारों ओर अनेक वनखंड बड़े-बड़े सरोवर आदि होते हैं । जहाँ वैमानिक देव-देवियाँ भव धारणीय शरीर से क्रीड़ा करते रहते हैं ।

मूल विमान से ईशानकोण में तीन दिशाओं में तीन द्वार से युक्त सुधर्मासभा आयी हुई है ।

सुधर्मासभा के ईशान कोण में जिनेश्वर परमात्मा का जिनालय है ।

उस सुधर्मासभा के मध्य में मणिपीठिका है, उसके ऊपर 60 योजन ऊँचा, एक योजन चौड़ा व 1 योजन गहरा माणवक नामक चैत्यस्तंभ है । उस स्तंभ के मध्य में सोने-चांदी के फलक हैं । उन फलकों में वज्र रत्न की खूँटियाँ हैं । उसके ऊपर छींके में रहे वज्र के दाभड़े हैं । उन दाभड़ों में अरिहंत परमात्मा की अस्थियाँ होती हैं, जो देवों के लिए पूज्य होती हैं ।

इन अस्थियों का प्रक्षालन-जल छाँटने से देवताओं के क्लेश व आवेश आदि दोष तत्काल नष्ट हो जाते हैं ।

सिद्धायतन के मध्य भाग में मणिपीठिका है, उसके सुंदर देवछंद हैं, वहाँ श्री अरिहंतों की शाश्वती 108 प्रतिमाएँ होती हैं, जिन्हें वैमानिक देव-देवी भक्ति से पूजते हैं ।

देवताओं का जन्म उपपात शय्या में होता है । उनका शरीर अत्यंत सुगंधित होता है । उनके मुख का पवन भी सुगंधित होता है उन्हें पसीना नहीं होता है । सौभाग्य आदि गुण-समूह से उनका शरीर अत्यंत सुंदर होता है ।

वैमानिक देव मनुष्यलोक में आने की इच्छा नहीं करते हैं क्योंकि-

1) दिव्य काम-भोग में आसक्त होने से मनुष्य संबंधी काम-भोग को नहीं चाहते हैं ।

2) दिव्य काम-भोग की आसक्ति के कारण मनुष्य संबंधी प्रेम नष्ट हो जाता है ।

3) नवीन उत्पन्न देव सोचता है, `अभी थोड़ी देर बाद जाता हूँ...' इन विचारों में वर्षों बीत जाते हैं और इधर मानव की मृत्यु हो जाती है ।

मनुष्य लोक की दुर्गंध 400-500 योजन ऊपर जाने से भी देवता लेते नहीं हैं ।

मनुष्य लोक में देवों का आगमन...

1) अरिहंत परमात्मा के पुण्य प्रभाव से पाँचों कल्याणक समय इन्द्र व देवता मनुष्यलोक में आते हैं ।

2) इन्द्र द्वारा किसी साधु या श्रावक के सद्गुणों की प्रशंसा करने पर, अश्रद्धा के कारण मिथ्यात्वी देव उन साधु-श्रावक की परीक्षा के लिए आते हैं ।

3) शालिभद्र जैसे विशिष्ट पुण्यशाली के पुत्र आदि स्नेह के अतिरेक से गोभद्र आदि देव आते हैं और भोग-सामग्री प्रदान करते हैं ।

4) पूर्व भव के स्नेह के कारण वैमानिक देव नरक में भी जाते हैं । जैसे 5वें ब्रह्मदेवलोक में उत्पन्न बलभद्र अपने भाई कृष्ण वासुदेव को दुःखमुक्त करने के लिए तीसरी नरक में गया है ।

सीता के जीव अच्युतेन्द्र ने चौथी नरक में जाकर परस्पर लड़ रहे रावण व लक्ष्मण को धर्मबोध दिया ।

देवताओं का अवधिज्ञान का क्षेत्र

देव नाम	नीचे	तीर्च्छा	ऊपर
सौधर्म ईशान	रत्नप्रभा तक	असंख्य द्वीप समुद्र	अपने विमान की ध्वजा तक
सनत्कुमार माहेन्द्र	शर्कराप्रभा	उससे विशेष असंख्य	अपने विमान की ध्वजा तक
ब्रह्मलोक लांतक	वालुकाप्रभा	उससे वि.असं.द्वीप समुद्र	अपने विमान की ध्वजा तक
महाशुक्र सहस्त्रार	पंकप्रभा	उससे वि.असं.द्वीप समुद्र	अपने विमान की ध्वजा तक
आनत प्राणत	धूमप्रभा	उससे असंख्य द्वीप समुद्र	अपने विमान की ध्वजा तक
आरण-अच्युत	तमः प्रभा	उससे असंख्य द्वीप समुद्र	अपने विमान की ध्वजा तक
नीचे व मध्य के 3-3 ग्रैवेयक	तमः प्रभा	उससे असंख्य द्वीप समुद्र	अपने विमान की ध्वजा तक
ऊपर के 3 ग्रैवेयक	महातमः प्रभा	उससे असंख्य द्वीप समुद्र	अपने विमान की ध्वजा तक
5 अनुत्तर	लोकनाली अंततक	उससे स्वयंभूरमण समुद्र	थोडा न्यून लोक नालिका तक

विमानों की संख्या

1 सौधर्म देवलोक	32,00,000
2 ईशान देवलोक	28,00,000
3 सनत्कुमार	12,00,000
4 माहेन्द्र	8,00,000
5 ब्रह्मलोक	4,00,000
6 लांतक	50,000
7 महाशुक्र	40,000
8 सहस्त्रार	6,000
9-10 आनत-प्राणत	400
11-12 आरण अच्युत	300
पहले तीन ग्रैवेयक	111
दूसरे तीन ग्रैवेयक	107
तीसरे तीन ग्रैवेयक	100
5 अनुत्तर ग्रैवेयक	5
कुल विमान	**84,97,023**

नौ ग्रैवेयक के नाम

1 सुदर्शन 2 सुप्रतिबद्ध 3 मनोरम 4 सर्वतोभद्र
5 सुविशाल 6 सौमनस 7 सुमनस 8 प्रियंकर 9 आदित्य

विशेषताएँ

1) अभव्य आत्मा साधुपने का स्वीकार करे तो अधिकतम नौवें ग्रैवेयक तक जा सकती है ।

2) सम्यग्दृष्टि साधु महात्मा ही पाँच अनुत्तर में जा सकते हैं । सर्वार्थसिद्ध विमानवासी एकावतारी होते हैं तथा शेष चार अनुत्तरवासी के अधिकतम 24 भव होते हैं, वे भी सिर्फ देव और मनुष्य के ही भव होते हैं ।

9 ग्रैवेयक व 5 अनुत्तर विमानवासी कल्पातीत होते हैं अर्थात् वहाँ स्वामी सेवक भाव नहीं होते हैं ।

अनुत्तर विमानवासी देव अपना दीर्घकाल तत्त्वचिंतन में ही व्यतीत करते हैं । तत्त्वचिंतन में कहीं शंका पड़े तो महाविदेह आदि क्षेत्रों में रहे तीर्थंकर परमात्मा, वहीं रहते हुए उनकी शंकाओं का समाधान कर देते हैं ।

9 लोकांतिक

ये 9 लोकांतिक देव ब्रह्मदेवलोक में लोक के अंत भाग की ओर एक ओर रहते हैं । ये देव अधिकतम 7-8 भवों में मोक्षगामी होते हैं । ब्रह्मलोक की चार दिशा, चार विदिशा और 1 मध्य में, स्थित ये विमान हैं ।

तीर्थंकर परमात्मा का दीक्षा काल नजदीक आने पर 1 वर्ष पूर्व, प्रभु के पास आकर **'जय जय नंदा, जय जय भद्दा'** कहकर प्रभु की स्तुति करते हैं और भगवान को **'भयवं तित्थं पवत्तेहिं'** हे भगवन् ! जगत् के जीवों के कल्याण के लिए तीर्थ का प्रवर्तन करो' कहकर निवेदन करते हैं ।

ये देवता लघुकर्मी होते हैं और कुछ ग्रंथों के अनुसार **'एकावतारी'** होते हैं ।

9 लोकांतिक देवों के नाम

(1) सारस्वत (2) आदित्य (3) वह्नि (4) अरुण (5) गर्दतोय (6) तुषित (7) अव्याबाध (8) मरुत (9) अरिष्ट ।

5 अनुत्तर देवों के नाम 1) विजय 2) वैजयंत 3) जयंत
4) अपराजित और 5) सर्वार्थसिद्ध

देवों के कुल 198 भेद

25 भेद भवनपति	10 भवनपति और 15 परमाधार्मिक	
26 भेद व्यंतर	8 व्यंतर 8 वाण व्यंतर 10 तिर्यक्जृंभक	
10 भेद ज्योतिष्क	5 चर 5 अचर	
38 भेद वैमानिक	12 सौधर्म आदि 3 किल्बिषिक 9 लोकांतिक	24 कल्पोपपन्न
	9 ग्रैवेयक 5 अनुत्तर	14 कल्पातीत

99

99 पर्याप्त तथा 99 अपर्याप्त का भेद करने पर
देवों के 99 + 99 = 198 भेद होते हैं ।

सिद्ध जीव

सिद्धा पनरस भेया तित्था-तित्थाइ सिद्ध भेएणं ।
एए संखेवेणं, जीव विगप्पा समक्खाया ।।25।।

शब्दार्थ :- सिद्धा=सिद्ध जीव **पनरस भेया=**पंद्रह भेदवाले **तित्थातित्थाइ=**तीर्थसिद्ध, अतीर्थसिद्ध आदि **सिद्धभेएण=**सिद्ध के भेद से **एए=**इस प्रकार **संखेवेणं=**संक्षेप से **जीव विगप्पा=**जीव के विकल्प **समक्खया=**कहे गए हैं ।

भावार्थ :- तीर्थ सिद्ध, अतीर्थ सिद्ध आदि सिद्ध जीवों के पंद्रह प्रकार हैं । इस प्रकार सभी जीवों के भेद संक्षेप में कहे गए ।

विवेचन :- इस सूत्र की दूसरी गाथा में जीव के मुख्य दो भेद बतलाए थे मुक्त और संसारी । अब तक की गाथाओं में संसारी जीवों का संक्षेप में स्वरुप और भेद बताया है । प्रस्तुत गाथा में मुक्त जीवों का स्वरुप और भेद बताते है ।

मुक्त अर्थात् जो आत्माएँ ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों के बंधनों से छुट चुके है । मुक्त जीवों को ही सिद्ध कहा जाता है ।

वैसे तो मोक्ष में गई सभी आत्माएँ एक समान ही है । फिर भी पूर्व के मनुष्य भव की अपेक्षा से इनके 15 भेद है–

1. जिन सिद्ध :– जो आत्माएँ तीर्थंकर बनकर मोक्ष में जाती हैं, उन्हें जिनसिद्ध कहते हैं ।

2. अजिन सिद्ध :– जो आत्माएँ तीर्थंकर पद पाए बिना सामान्य केवली बनकर मोक्ष में जाती हैं, उन्हें अजिन सिद्ध कहते हैं ।

3. तीर्थ सिद्ध :– तीर्थ की स्थापना के बाद जो आत्माएँ मोक्ष में जाती हैं, उन्हें तीर्थसिद्ध कहते हैं ।

4. अतीर्थ सिद्ध :– तीर्थ की स्थापना होने के पहले जो सिद्ध बने हों वे अतीर्थसिद्ध कहलाते हैं ।

5. गृहस्थ लिंग सिद्ध :– गृहस्थ वेष में जो सिद्ध बने हों वे गृहस्थ लिंग सिद्ध कहलाते हैं ।

6. अन्य लिंग सिद्ध :– तापस आदि अन्य लिंग में सिद्ध हुए हों ।

7. स्वलिंग सिद्ध :– साधु वेष में सिद्ध बने हों वे स्वलिंग सिद्ध कहलाते हैं ।

8. स्त्रीलिंग सिद्ध :– स्त्री सिद्ध हुई हो उसे स्त्रीलिंग सिद्ध कहते हैं ।

9. पुरूष लिंग सिद्ध :– पुरूष रूप में जो सिद्ध बने हों ।

10. नपुंसकलिंग सिद्ध :– कृत्रिम नपुंसक सिद्ध हुए हों वे नपुंसक लिंग सिद्ध कहलाते हैं ।

11. प्रत्येकबुद्ध सिद्ध :– किसी निमित्त को पाकर स्वयं दीक्षा ली हो वे प्रत्येक बुद्ध कहलाते हैं ।

12. स्वयंबुद्ध सिद्ध :– बिना किसी निमित्त के स्वयं बोध पाकर दीक्षा ली हो वे स्वयंबुद्ध सिद्ध कहलाते हैं ।

13. बुद्धबोधित सिद्ध :– गुरू के उपदेश से बोध पाकर दीक्षा ली हो, वे बुद्धबोधित सिद्ध कहलाते हैं ।

14. एक सिद्ध : एक समय में एक ही सिद्ध हो ।

15. अनेक सिद्ध : एक समय में अनेक सिद्ध हों ।

पाँच द्वार

एएसिं जीवाणं, सरीर-माऊ ठिई सकायम्मि ।
पाणा जोणि पमाणं, जेसिं जं अत्थि तं भणिमो ।।26।।

शब्दार्थ :- एएसिं=इन **जीवाणं=**जीवों के **सरीरं=**शरीर **आऊ=**आयुष्य **ठिई=**स्थिति **सकायम्मि=**स्वकाया में **पाणा=**प्राण **जोणि=**योनि **पमाणं=**प्रमाण **जेसिं=**जिनका **जं अत्थि=**जो है **तं भणिमो=**उसे कहता हूँ ।

भावार्थ :- इन जीवों में शरीर, आयुष्य, स्वकाय-स्थिति, प्राण और योनियों का जो प्रमाण है, उसे कहता हूँ ।

विवेचन :- 1 से लेकर 25 गाथाओं में जीवों के स्वरूप का विचार पूर्ण हुआ । अब इन संसारी जीवों के शरीर की ऊँचाई कितनी है ? उनका आयुष्य कितना है ? उनमें प्राण कितने हैं ? उनकी योनियाँ कितनी हैं ? और उनकी स्वकाय स्थिति कितनी है ? इत्यादि पाँच द्वारों के माध्यम से उन जीवों का विचार किया जाएगा ।

शरीर की ऊँचाई और आयु भी जघन्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकार से बतायी जाएगी ।

सर्वज्ञ भगवंतों ने अपने केवलज्ञान से प्रत्यक्ष देखकर चौदह राजलोक में रहे जीवों के यथार्थ स्वरूप का जो वर्णन किया है, उसे जानने, समझने के बाद लगता है कि वर्तमान विज्ञान ने जीव विज्ञान के बारे में जो कुछ बतलाया है वह कितना अल्प है ।

एक महासागर के आगे एक जलबिंदु कितना छोटा लगता है, उसी प्रकार सर्वज्ञ भगवंतों के अनंत ज्ञान के आगे वर्तमान वैज्ञानिकों की सिद्धियाँ या शोध भी महासागर के आगे बिंदु तुल्य ही है ।

पहले आरे में मनुष्य की ऊँचाई 3 कोस प्रमाण थी । उनका आयुष्य तीन पल्योपम जितना था, आज भी स्वयंभूरमण समद्र में 1000 योजन के मत्स्य पाए जाते हैं, देवताओं व नारकों का उत्कृष्ट आयुष्य 33 सागरोपम जितना है, इत्यादि अनेक बातें हैं, जिनके बारे में आज के वैज्ञानिक कल्पना भी नहीं कर पाते हैं । ये सब बातें सामान्य ज्ञानवाले मानव के सोच के बाहर ही हैं ।

परंतु ये सब सत्य बातें सर्वज्ञ भगवंतों ने बतलाई हैं, अतः उनमें शंका को कोई स्थान ही नहीं हो सकता ।

हाँ ! श्रद्धा से गम्य कई पदार्थों को तर्क या दृष्टांत से समझाया नहीं जा सकता । उन्हें जानने के लिए या तो स्वयं को सर्वज्ञ बनना होगा या सर्वज्ञ भगवंतों के ज्ञान पर श्रद्धा रखनी होगी, तभी हम उनके अनंतज्ञान के अंश का लाभ भी उठा सकेंगे ।

पहला द्वार-शरीर की ऊँचाई

एकेन्द्रिय जीवों की ऊँचाई

अंगुल-असंख-भागो, सरीर-मेगिंदियाण सव्वेसिं ।
जोयण सहस्स-महियं, नवरं पत्तेय-रुक्खाणं ।।27।।

शब्दार्थ :- अंगुल असंखभागो=अंगुल का असंख्यातवाँ भाग **सरीरं=**शरीर की ऊँचाई **एगिंदियाणं=**एकेन्द्रियों का **सव्वेसिं=**सभी का **जोयण सहस्सं=**1 हजार योजन **अहियं=**अधिक **नवरं=**परंतु **पत्तेय=**प्रत्येक **रुक्खाणं=**वनस्पति का ।

भावार्थ :- सभी एकेन्द्रिय जीवों के शरीर की ऊँचाई अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी है, परंतु प्रत्येक वनस्पतिकाय का शरीर 1 हजार योजन से कुछ अधिक है ।

विवेचन :- एकेन्द्रिय जीवों के कुल 22 भेद हैं, उनमें मात्र प्रत्येक वनस्पतिकाय के एक भेद को छोड़कर शेष 21 भेदवाले एकेन्द्रिय जीवों के शरीर की जघन्य और उत्कृष्ट ऊँचाई अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी है ।

असंख्य की संख्या के असंख्य भेद हैं । यद्यपि जघन्य और उत्कृष्ट शरीर एक समान नहीं है, फिर भी आखिर है तो अंगुल के असंख्य भाग जितना ही ।

सभी एकेन्द्रिय जीवों के शरीर की अवगाहना भी एक समान नहीं है । उनमें रही तरतमता निम्नानुसार है–

1) सबसे छोटा शरीर सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकाय के जीवों का होता है ।

2) इससे असंख्य गुणा बड़ा शरीर सूक्ष्म वायुकाय के जीवों का होता है ।

3) इससे असंख्य गुण बड़ा शरीर सूक्ष्म अग्निकाय के जीवों का होता है ।

4) इससे असंख्य गुणा बड़ा शरीर सूक्ष्म अप्काय के जीवों का होता है ।

5) इससे असंख्य गुणा बड़ा शरीर सूक्ष्म पृथ्वीकाय के जीवों का होता है ।

6) इससे असंख्य गुणा बड़ा शरीर बादर वायुकाय के जीवों का होता है ।

7) इससे असंख्य गुणा बड़ा शरीर बादर अग्निकाय के जीवों का होता है ।

8) इससे असंख्य गुणा बड़ा शरीर बादर अप्काय के जीवों का होता है ।

9) इससे असंख्य गुणा बड़ा शरीर बादर पृथ्वीकाय के जीवों का होता है ।

10) इससे असंख्य गुणा बड़ा शरीर बादर साधारण वनस्पतिकाय के जीवों का होता है ।

इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से छोटे-बड़े शरीर होते हुए भी वे सभी शरीर प्रमाण में अंगुल के असंख्य भाग प्रमाण ही होते हैं ।

प्रत्येक वनस्पतिकाय की उत्कृष्ट अवगाहना एक हजार योजन से भी कुछ अधिक होती है ।

1000 योजन गहरे समुद्र में जो वनस्पति पाई जाती है, वह 1000 योजन से भी अधिक ऊँचाईवाली होती हैं, क्योंकि 1000 योजन तक तो वह पानी में ही होती है, ऊपर का जो भाग है, वह अधिक समझना चाहिए ।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव बहुत बड़ी संख्या में इकट्ठे हो जाँय तो भी हम उन्हें अपनी आँखों से देख नहीं सकते हैं ।

एक आँवले प्रमाण पृथ्वीकाय में जितने जीव हैं, उन जीवों का शरीर सरसों प्रमाण का हो जाय तो पूरे जंबुद्वीप में भी वे समा नहीं सकते हैं ।

यहाँ 8 जव का एक अंगुल, 12 अंगुल का एक वेंत, 2 वेंत का एक हाथ, 4 हाथ का एक धनुष, 2000 धनुष का एक कोस/गाउ, 4 कोस का एक योजन होता है ।

विकलेन्द्रिय जीवों की ऊँचाई

बारस जोयण तिन्नेव, गाउआ जोयणं च अणुक्कमसो ।
बेइंदिय-तेइंदिय, चउरिंदिय देह-मुच्चत्तं ।।28।।

शब्दार्थ :- बारस जोयण=बारह योजन **तिन्नेव=**तीन ही **गाउआ=**गव्यूत (गाउ) **जोयणं=**योजन **च=**तथा **अणुक्कमसो=**क्रमशः **बेइंदिय=**दो इन्द्रियवाले **तेइंदिय=**तीन इन्द्रियवाले **चउरिंदिय=**चार इन्द्रियवाले **देहमुच्चत्तं=**देह की ऊँचाई

भावार्थ :- दो इन्द्रियवाले, तीन इन्द्रियवाले और चार इन्द्रियवाले जीवों के शरीर की ऊँचाई क्रमशः बारह योजन, तीन गाउ और एक योजन प्रमाण होती है ।

विवेचन :- विकलेन्द्रिय जीवों में ऊँचाई का अर्थ लंबाई समझना चाहिए ! विकलेन्द्रिय जीव बहुत ऊँचे नहीं, बल्कि लंबे होते हैं ।

द्वीन्द्रिय जीवों की अधिकतम लंबाई 12 योजन प्रमाण होती है । इतने बड़े-बड़े केंचुए होते हैं कि चक्रवर्ती का सैन्य भी उन पर खड़ा रह सकता है ।

शास्त्र में बात आती है कि केंचुए पर चक्रवर्ती का सैन्य खड़ा हो और केंचुआ हट जाय तो चक्रवर्ती का सैन्य नीचे गिर सकता है ।

ढाई द्वीप के बाहर लंबी-चौड़ी कायावाले विकलेन्द्रिय जीव पाए जाते हैं ।

जीव	ऊँचाई
1) एकेन्द्रिय के 21 भेद	अंगूल का असंख्यातवाँ भाग
2) प्रत्येक वनस्पतिकाय	1000 योजन से कुछ अधिक
3) द्वीन्द्रिय जीव	बारह योजन
4) त्रीन्द्रिय जीव	तीन कोस
5) चतुरिन्द्रिय जीव	एक योजन

नारकी जीवों की ऊँचाई

धणुसयपंचपमाणा, नेरइया सत्तमाइ पुढवीए ।
तत्तो अद्धद्धूणा, नेया रयणप्पहा जाव ।।29।।

शब्दार्थ :- धणुसयपंच=पाँचसौ धनुष **पमाणा=**प्रमाण **नेरइया=**नारकी **सत्तमाइ=**सातवीं आदि **पुढवीए=**पृथ्वी **तत्तो=**वहाँ से **अद्धद्धूणा=**आधी आधी न्यून **नेया=**जानना चाहिए **रयणप्पहा=**रत्नप्रभा **जाव=**तक ।

भावार्थ :- सातवीं पृथ्वी में नारकी जीवों के शरीर की ऊँचाई 500 धनुष प्रमाण है, वहाँ से रत्नप्रभा तक आधी आधी कम समझनी चाहिए ।

विवेचन :-

नारक जीवों की ऊँचाई

नरक	नारक पृथ्वी	मूलशरीर की ऊँचाई धनुष अंगुल	उत्तर वैक्रिय की ऊँचाई धनुष अंगुल
1.	रत्नप्रभा	7¾ – 6	15½ – 12
2.	शर्कराप्रभा	15½ – 12	31¼
3.	वालुकाप्रभा	31¼	62½
4.	पंक प्रभा	62½	125
5.	धूम प्रभा	125	250
6.	तमः प्रभा	250	500
7.	महातमः प्रभा	500	1000

सात नरक पृथ्वियों में जो ऊँचाई बतलाई है, वह स्थूल से बतलाई है बाकी तो सभी नरक पृथ्वियों में अलग-अलग संख्या में प्रतर आए हुए हैं। उन प्रतरों में पैदा होनेवाले नारकों की ऊँचाई भी भिन्न-भिन्न है ।

प्रस्तुत प्रकरण में जीवों के स्वरूप का स्थूल ज्ञान होने से यहाँ बहुत सूक्ष्मता से नहीं बतलाया है ।

नारक जीवों के पास वैक्रिय लब्धि भी होती है, उस लब्धि द्वारा वे उत्तर वैक्रिय शरीर की रचना करते हैं ।

जिन नारक जीवों का जो मूल वैक्रिय शरीर होता है, वे उससे दुगुना वैक्रिय शरीर बना सकते हैं ।

जैसे-7 वीं नरक के जीव का मूल शरीर 500 धनुष प्रमाण है तो वे अपने मूल शरीर से दुगुना अर्थात् 1000 धनुष प्रमाण उत्तर वैक्रिय शरीर बना सकते हैं, उससे अधिक नहीं ।

गर्भज तिर्यंचों की ऊँचाई

जोयण सहस्समाणा, मच्छा उरगा य गब्भया हुंति ।
धणुह पुहुत्तं पक्खीसु, भुयचारी गाउअ पुहुत्तं ।।30।।

शब्दार्थ :- जोयण सहस्स=एक हजार योजन **माणा=**प्रमाण **मच्छा=**मत्स्य **उरगा=**उर परिसर्प **य=**और **गब्भया=**गर्भज **हुंति=**होते हैं **धणुह पुहुत्तं=**धनुष पृथक्त्व **पक्खीसु=**पक्षियों में **भुयचारी=**भुजपरिसर्प **गाउअ=**गाउ **पुहुत्तं=**पृथक्त्व ।

भावार्थ :- मत्स्य व गर्भज उर परिसर्प एक हजार योजन जितने लंबे होते हैं । पक्षियों की ऊँचाई धनुष पृथक्त्व और भुजपरिसर्प की ऊँचाई गाउ पृथक्त्व प्रमाण होती है ।

विवेचन :- संमूर्च्छिम और गर्भज दोनों प्रकार के जलचर प्राणी-मत्स्य आदि की लंबाई एक हजार योजन प्रमाण होती है । उरपरिसर्प अर्थात् छाती से रेंगकर चलनेवाले सर्प आदि की लंबाई भी एक हजार योजन प्रमाण है ।

स्वयंभूरमण समुद्र मध्यलोक में सबसे बड़ा, आधे राजलोक के विस्तारवाला समुद्र है, उस समुद्र में एक हजार योजन लंबे मत्स्य पाए जाते हैं ।

गर्भज खेचर (आकाश में उड़नेवाले पक्षी) की लंबाई धनुष पृथक्त्व अर्थात् दो से नौ धनुष प्रमाण है । भुजपरिसर्प अर्थात् भुजाओं के बलपर चलने वाले जीवों की लंबाई धनुष पृथक्त्व अर्थात् 2 से लेकर 9 धनुष प्रमाण है ।

खयरा धणुह-पुहुत्तं, भुयगा उरगा य जोयण पुहुत्तं ।
गाउअ पुहुत्त मित्ता, संमुच्छिमा चउपया भणिया ।।31।।

शब्दार्थ :- खयरा=खेचर **धणुह पुहुत्तं=**धनुष पृथक्त्व **भुयगा=**भुज परिसर्प **उरगा=**उर परिसर्प **य=**तथा **जोयण पुहुत्तं=**योजन पृथक्त्व **गाउअ=**गव्यूत **पुहुत्तमित्ता=**पृथक्त्व मापवाले **संमुच्छिमा=**संमूर्च्छिम **चउपया=**चतुष्पद **भणिया=**कहे गए हैं ।

भावार्थ :- संमूर्च्छिम खेचर और भुज परिसर्प धनुष पृथक्त्व, उर परिसर्प योजन पृथक्त्व, चतुष्पद गव्यूत पृथक्त्व मापवाले हैं ।

विवेचन :- नर-मादा के संयोग बिना वातावरण से सहज पैदा होने वाले संमूर्च्छिम खेचर और भुज परिसर्प की लंबाई 2 से 9 धनुष प्रमाण, संमूर्च्छिम उर परिसर्प की 2 से 9 योजन, संमूर्च्छिम चतुष्पद की 2 से 9 कोस की ऊँचाई होती है ।

तिर्यंचो की उत्कृष्ट ऊँचाई

जीव	ऊँचाई
1) संमुर्च्छिम जलचर	1000 योजन
2) गर्भज जलचर	1000 योजन
3) संमुर्च्छिम उरपरिसर्प	2 से 9 योजन
4) गर्भज उरपरिसर्प	1000 योजन
5) संमुच्छिम भूज परिसर्प	2 से 9 धनुष
6) गर्भज भूज परिसर्प	2 से 9 धनुष
7) संमुच्छिम चतुष्पद	2 से 9 कोस
8) गर्भज चतुष्पद	6 कोस
9) संमुच्छिम खेचर	2 से 9 धनुष
10) गर्भज खेचर	2 से 9 धनुष

गर्भज चतुष्पद व मनुष्य की ऊँचाई

छच्चेव गाउआईं, चउप्पया गब्भया मुणेयव्वा ।
कोसतिगं च मणुस्सा, उक्कोस सरीर-माणेणं ।।32।।

शब्दार्थ :- छच्चेव=छ ही **गाउआइ=**कोस **चउप्पया=**चतुष्पद **गब्भया=**गर्भज **मुणेयव्वा=**जानना चाहिए **कोस तिगं=**तीन कोस **च=**और **मणुस्सा=**मनुष्य **उक्कोस=**उत्कृष्ट **सरीरमाणेणं=**शरीर प्रमाण

भावार्थ :- गर्भज चतुष्पद की ऊँचाई छह कोस की होती है और मनुष्य के शरीर की ऊँचाई तीन कोस होती है ।

विवेचन :- भरत और ऐरावत क्षेत्र में काल की व्यवस्था है । उत्सर्पिणी

और अवसर्पिणी काल में छह छह आरे होते हैं । उन आरों में जीवों की ऊँचाई और आयुष्य घटता-बढ़ता रहता है ।

अकर्मभूमि रूपी युगलिक क्षेत्रों में और महाविदेह क्षेत्र में अवस्थित भाव होते हैं, वहाँ जीवों की ऊँचाई और आयुष्य निश्चित होते हैं ।

भरत व ऐरावत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल के पहले और उत्सर्पिणी काल के छठे आरे में जो भाव होते हैं, वे भाव देवकुरु और उत्तर कुरु में हमेशा रहते हैं ।

गर्भज चतुष्पद और गर्भज मनुष्यों की जो उत्कृष्ट ऊँचाई बतलाई है, वह उत्कृष्ट ऊँचाई अर्थात् गर्भज चतुष्पदों की छह कोस प्रमाण और गर्भज मनुष्य की तीन कोस प्रमाण इन क्षेत्रों में हमेशा होती है ।

मनुष्य की उत्कृष्ट ऊँचाई

आरा	ऊँचाई
1) पहला	3 कोस
2) दूसरा	2 कोस
3) तीसरा	1 कोस
4) चौथा	500 धनुष
5) पांचवा	7 हाथ
6) छठा	1 हाथ

देवों की ऊँचाई

ईसाणंत सुराणं, रयणीओ सत्त हुंति उच्चत्तं ।
दुग दुग दुग चउ गेविज्ज णुत्तरेक्किक्क परिहाणी ।।33।।

शब्दार्थ :- ईसाणंत=ईशान देवलोक तक **सुराणं=**देवताओं की **रयणीओ=**हाथ **सत्त=**सात **हुंति=**होती है **उच्चत्तं=**ऊँचाई **दुग दुग दुग=**दो दो और दो **चउ=**चार **गेविज्ज=**ग्रैवेयक **अणुत्तरे=**अनुत्तर **इक्किक्क=**एक-एक **परिहाणी=**हानि ।

भावार्थ :- ईशान (दूसरा वैमानिक देवलोक) के देवताओं की उत्कृष्ट

ऊँचाई सात हाथ प्रमाण है । उसके बाद ऊपर-ऊपर के देवलोकों में दो, दो, दो, चार, ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान में 1-1 हाथ कम ऊँचाई है ।

देव	ऊँचाई
भवनपति, व्यंतर, वाण व्यंतर, ज्योतिष, तिर्यक्जृंभक, परमाधार्मिक, पहले व दूसरे देवलोक, पहले किल्बिषिक	7 हाथ
तीसरा-चौथा देवलोक एवं दूसरा किल्बिषिक	6 हाथ
पाँचवाँ-छठा देवलोक और तीसरा किल्बिषिक, नौलोकांतिक	5 हाथ
सातवाँ-आठवाँ देवलोक	4 हाथ
नौवाँ-दसवाँ-ग्यारहवाँ-बारहवाँ देवलोक	3 हाथ
नौ ग्रैवेयक देवों की ऊँचाई	2 हाथ
पाँच अनुत्तर	1 हाथ

क्रमशः अधिक-अधिक ऊँचाई वाले जीव

(1) अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी ऊंचाई :-
1-2 सूक्ष्म-बादर पृथ्वीकाय,3-4 सूक्ष्म-बादर अप्काय,
5-6 सूक्ष्म बादर तेउकाय, 7-8 सूक्ष्म बादर वायुकाय,
9 सूक्ष्म-बादर साधारण वनस्पतिकाय, 10 संमूर्च्छिम मनुष्य ।

(2) एक हाथ की ऊँचाई वाले :- 5 अनुत्तर ।

(3) दो हाथ की ऊँचाईवाले :- 9 ग्रैवेयक ।

(4) तीन हाथ की ऊँचाईवाले :-
नौवें-दसवें-ग्यारहवें बारहवें वैमानिक देवलोक के देवता ।

(5) चार हाथ की ऊँचाईवाले :- सातवें-आठवें देवलोक के देवता ।

(6) पाँच हाथ की ऊँचाईवाले :- पाँचवें-छठे देवलोक के देवता, तीसरे किल्बिषिक देव, नौ लोकांतिक देव ।

(7) छह हाथ की ऊँचाईवाले :-
तीसरे व चौथे वैमानिक देवता ।

(8) सात हाथ की ऊँचाईवाले :-

10 भवनपति निकाय के देवता, 8 व्यंतर निकाय के देवता,
10 तिर्यक् जृंभक जाति के देवता, 5 चर ज्योतिष निकाय के देवता,
5 स्थिर ज्योतिष निकाय के देवता, 1 सौधर्म देवलोक के देवता,
1 ईशान देवलोक के देवता, 1 पहले किल्बिषिक जाति के देवता ।

(9) नारकों की ऊँचाई :-

पहली नरक में 7¾ धनुष 6 अंगुल, दूसरी नरक में 15½ धनुष 12 अंगुल,
तीसरी नरक में 31¼ धनुष, चौथी नरक में 62½ धनुष,
पाँचवीं नरक में 125 धनुष, छठे नरक में 250 धनुष,
सातवीं नरक में 500 धनुष ।

(10) धनुष-पृथक्त्व ऊँचाईवाले :-

गर्भज और संमूर्च्छिम खेचर, संमूर्च्छिम भुज परिसर्प ।

(11) तीन गाउ की ऊँचाईवाले :- त्रीन्द्रिय, गर्भज मनुष्य ।

(12) छह गाउ की ऊँचाईवाले :- गर्भज चतुष्पद ।

(13) गाउ पृथक्त्व ऊँचाईवाले :- गर्भज भुजपरिसर्प, संमूर्च्छिम चतुष्पद ।

(14) 1 योजन ऊँचाईवाले :- चतुरिन्द्रिय जीव ।

(15) 12 योजन ऊँचाईवाले :- द्वीन्द्रिय जीव ।

(16) योजन पृथक्त्व ऊँचाईवाले :- संमूर्च्छिम उर परिसर्प ।

(17) 1000 योजन ऊँचाईवाले :- गर्भज उर परिसर्प, गर्भज खेचर,
गर्भज संमूर्च्छिम जलचर ।

(18) 1000 योजन से अधिक ऊँचाईवाले :- बादर प्रत्येक वनस्पतिकाय ।

आयुष्य द्वार

बावीसा पुढवीए, सत्त य आउस्स तिन्नि वाउस्स ।
वास सहस्सा दस तरु, गणाण तेऊ तिरत्ताऊ ।।34।।

शब्दार्थ :- बावीसा=बाईस **पुढवीए=**पृथ्वीकाय की **सत्त=**सात **य=**और **आउस्स=**अप्काय की **तिन्नि=**तीन **वाउस्स=**वायुकाय की **वास=**वर्ष **सहस्सा=**हजार **दस=**दश **तरुगणाण=**वनस्पतिकाय **तेऊ=**तेउकाय की **तिरत्त=**तीन रात्रि दिन **आऊ=**आयुष्य ।

भावार्थ :- पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय और प्रत्येक वनस्पतिकाय की क्रमशः बाईस, सात, तीन और दस हजार वर्ष तथा तेउकाय का तीन अहोरात्र उत्कृष्ट आयुष्य है ।

विवेचन :- जिस प्रकार पृथ्वीकाय आदि में जीव होता है, उसी प्रकार उन जीवों का निश्चित आयुष्य भी होता है । जब तक आयुष्य होता है, तब तक कोई जीव एक गति में अमुक काल तक जीवित रह सकता है । आयुष्य पूर्ण होते ही उसकी मृत्यु हो जाती है ।

मृत्यु के बाद उनका कलेवर शेष रहता है । खान में रहा पत्थर, नीचे की पृथ्वी आदि सचित्त होती है, परंतु वर्षा, धूप, वायु के प्रहार आदि से वह भूमि अचित्त बन जाती है ।

पृथ्वीकाय आदि जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य कितना होता है, उसका निर्देश उपर्युक्त गाथा में किया गया है ।

इस गाथा में पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और प्रत्येक वनस्पतिकाय के उत्कृष्ट आयुष्य का निर्देश किया है ।

पृथ्वीकाय का उत्कृष्ट आयुष्य	22000 वर्ष
अप्काय का उत्कृष्ट आयुष्य	7000 वर्ष
तेउकाय का उत्कृष्ट आयुष्य	तीन अहोरात्र
वायुकाय का उत्कृष्ट आयुष्य	3000 वर्ष
प्रत्येक वनस्पतिकाय का उत्कृष्ट आयुष्य	10000 वर्ष है ।

विकलेन्द्रियों का आयुष्य

वासाणि बारसाऊ, बेइंदियाणं तेइंदियाणं तु ।
अउणापन्न दिणाइं, चउरिंदीणं तु छम्मासा ।।35।।

शब्दार्थ :- वासाणि=वर्ष **बारस=**बारह **आऊ=**आयुष्य **बेइंदियाणं=**द्वीन्द्रियों का **तेइंदियाणं=**त्रीन्द्रियों का **तु=**तथा **अउणापन्न=**उनपचास **दिणाइं=**दिन **चउदिंदीणं=**चतुरिन्द्रियों का **तु=**तथा **छम्मासा=**छ मास ।

भावार्थ :- द्वीन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य 12 वर्ष, त्रीन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य उनपचास दिन तथा चतुरिन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य छह मास है ।

देवता आदि का उत्कृष्ट आयुष्य

सुर-नेरइयाण ठिई, उक्कोसा सागराणि तित्तीसं ।
चउपय-तिरिय मणुस्सा, तिन्नि य पलिओवमा हुंति ।।36।।

शब्दार्थ :- सुर=देवता **नेरइयाण=**नारकों की **ठिई=**स्थिति **उक्कोसा=**उत्कृष्ट **सागराणि=**सागरोपम **तित्तीसं=**तैंतीस **चउपय=**चतुष्पद **तिरिय=**तिर्यंच **मणुस्सा=**मनुष्य **तिन्नि=**तीन **य=**तथा **पलिओवमा=**पल्योपम **हुंति=**है ।

भावार्थ :- देवता और नरक के जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य तैंतीस सागरोपम है और चतुष्पद तिर्यंच और मनुष्यों का उत्कृष्ट आयुष्य तीन पल्योपम है ।

विवेचन :- समस्त प्राणी-सृष्टि में सबसे अधिक उत्कृष्ट आयुष्य देवता और नरक के जीवों का होता है । नरक में भी यह उत्कृष्ट आयुष्य 7 वीं नरक के जीवों का होता है और देवलोक में रहे देवताओं का उत्कृष्ट आयुष्य पाँच अनुत्तर में रहे सर्वार्थसिद्ध विमान के देवताओं का होता है ।

मनुष्य और चतुष्पद तिर्यंच पंचेन्द्रियों का उत्कृष्ट आयुष्य तीन पल्योपम कहा गया है । चतुष्पद तिर्यंच, मनुष्य का यह उत्कृष्ट आयुष्य भी देवकुरु और उत्तरकुरु में रहे युगलिकों का तथा भरत और ऐरावत क्षेत्र में अवसर्पिणी काल के पहले आरे एवं उत्सर्पिणी काल के छठे आरे में रहे मनुष्य व चतुष्पद तिर्यंचों का होता है ।

वैमानिक देवों का आयुष्य

देवलोक	जघन्य आयुष्य	उत्कृष्ट आयुष्य
1 सौधर्म	1 पल्योपम	दो सागरोपम
2 ईशान	साधिक पल्योपम	दो सागरोपम से कुछ अधिक
3 सानत्कुमार	2 सागरोपम	सात सागरोपम
4 माहेन्द्र	साधिक 2 सागरोपम	7 सागरोपम से कुछ अधिक
5 ब्रह्मलोक	साधिक 7 सागरोपम	10 सागरोपम
6 लांतक	10 सागरोपम	14 सागरोपम
7 महाशुक्र	14 सागरोपम	17 सागरोपम
8 सहस्त्रार	17 सागरोपम	18 सागरोपम
9 आनत	18 सागरोपम	19 सागरोपम
10 प्राणत	19 सागरोपम	20 सागरोपम
11 आरण	20 सागरोपम	21 सागरोपम
12 अच्युत	21 सागरोपम	22 सागरोपम

नौ ग्रैवेयक में आयुष्य

देवलोक	जघन्य आयुष्य	उत्कृष्ट आयुष्य
पहला ग्रैवेयक	22 सागरोपम	23 सागरोपम
दूसरा ग्रैवेयक	23 सागरोपम	24 सागरोपम
तीसरा ग्रैवेयक	24 सागरोपम	25 सागरोपम
चौथा ग्रैवेयक	25 सागरोपम	26 सागरोपम
पाँचवाँ ग्रैवेयक	26 सागरोपम	27 सागरोपम
छठा ग्रैवेयक	27 सागरोपम	28 सागरोपम
सातवाँ ग्रैवेयक	28 सागरोपम	29 सागरोपम
आठवाँ ग्रैवेयक	29 सागरोपम	30 सागरोपम
नौवाँ ग्रैवेयक	30 सागरोपम	31 सागरोपम
विजय आदि चार अनुत्तर में	31 सागरोपम	32 सागरोपम
सर्वार्थसिद्ध में	-	33 सागरोपम

नरक में जघन्य और उत्कृष्ट आयुष्य

नरक	जघन्य	उत्कृष्ट
1 रत्नप्रभा	10000 वर्ष	1 सागरोपम
2 शर्कराप्रभा	1 सागरोपम	3 सागरोपम
3 वालुकाप्रभा	3 सागरोपम	7 सागरोपम
4 पंक प्रभा	7 सागरोपम	10 सागरोपम
5 धूम प्रभा	10 सागरोपम	17 सागरोपम
6 तमः प्रभा	17 सागरोपम	22 सागरोपम
7 महात्मः प्रभा	22 सागरोपम	33 सागरोपम

मनुष्य का उत्कृष्ट आयुष्य

आरा	आयुष्य
1) सुषम सुषम	3 पल्योपम
2) सुषम	2 पल्योपम
3) सुषम दुःषम	1 पल्योपम
4) दुःषम सुषम	1 क्रोड पूर्व वर्ष
5) दुःषम	130 वर्ष
6) दुःषम-दुःषम	20 वर्ष

पल्योपम, सागरोपम

पल्य की उपमा द्वारा जिस संख्या को समझाया जाता है उसे पल्योपम कहते हैं ।

इस पल्योपम में असंख्य वर्ष होते हैं । यद्यपि इस पल्योपम के कुल छह भेद होते हैं । उद्धार, अद्धा और क्षेत्र पल्योपम के सूक्ष्म और बादर भेद करने पर पल्योपम के कुल छह भेद होते हैं, परंतु, आयुष्य के माप में बादर अद्धा पल्योपम का उपयोग होने से उसका स्वरूप बतलाते हैं ।

बादर उद्धार पल्योपम

उत्सेघ अंगुल के माप से एक योजन लंबा, चोडा और गहरे घनवृत्त

कुएं को देवकुरु-उत्तर कुरु में पैदा हुए युगलिक मनुष्य के 7 दिन में उगे बालों से ठूंस ठूंस कर भरा जाय ।

`क्षेत्र समास' की टीका के अभिप्राय से देवकुरु-उत्तर कुरु में उत्पन्न हुए युगलिकों के बाल सूक्ष्म होते है ।

7 दिन की भेड के एक उत्सेघ अंगुल प्रमाण एक ही रोम के 7 बार आठ-आठ टुकडे करे तो 1 उत्सेध अंगुल प्रमाण 1 बाल के 2097152 रोम खंड होते है । ऐसे सूक्ष्म खंडों से कुएं को इस प्रकार भरा जाय कि चक्रवर्ती की सेना भी उस पर चले तो वे बाल दबे नही, आग से जले नहीं और पानी से भीगे नहीं, उस कुएं में से 1 एक-एक समय में 1-1 बाल बाहर निकालने पर जब कुआं खाली हो उसे बादर उद्धार पल्योपम कहते है ।

इस पल्योपम का काल मान संख्याता समय का है । एक निमेष (आंख के पलकारे) में असंख्य समय हो जाते है । एक निमेष मात्र से भी अल्प काल प्रमाण यह पल्योपम है ।

जगत् की किसी भी वस्तु को मापने के लिए इस पल्योपम का उपयोग नहीं होता हैं, एक मात्र सूक्ष्म उद्धार पल्योपम को समझाने के लिए उस पल्योपम का स्वरुप बताया गया है ।

सूक्ष्म अद्धा पल्योपम

बादर उद्धार पल्योपम में जो बाल भरे गए, उन सभी बालों के असंख्य टुकडों की कल्पना करे-उन कल्पित टुकडों को प्रति समय एक एक टुकडों को बाहर निकालने में जितना समय लगे, उसे सूक्ष्म उद्धार पल्योपम कहते है । इस पल्योपम का प्रमाण संख्याता करोड वर्ष प्रमाण है ।

ऐसे 10 कोटाकोटि सूक्ष्म उद्धार पल्योपम का एक सूक्ष्म उद्धार सागरोपम होता है । इस पल्योपम द्वारा मध्यलोक में रहे द्वीप-समुद्रों की संख्या का निर्णय होता है ।

25 कोडाकोडी सूक्ष्म उद्धार पल्योपम के जितने समय होते हैं, उतने समय प्रमाण द्वीप-समुद्र है ।

बादर अद्धा पल्योपम

बादर उद्धार पल्योपम में बालों के टुकडों की जो कल्पना की थी,

वहीं कल्पना यहां भी करने की हैं, इस बादर अद्धा पल्योपम में 1-1 बाल के टुकडें को 100-100 वर्ष के बाद बाहर निकालना होता है । इस प्रकार 100-100 वर्षों में 1-1 बाल के टुकडें को बाहर निकालने पर जब वह कुआं संपूर्ण खाली हो जाता है, उस काल को बादर उद्धार पल्योपम कहतें है । इस पल्योपम में संख्याता करोड वर्ष होते है ।

इस पल्योपम का निरुपण सूक्ष्म अद्धा पल्योपम को समझने के लिए है ।

सूक्ष्म अद्धा पल्योपम

सूक्ष्म उद्धार पल्योपम की गणना में रोमखंड के असंख्य-असंख्य टुकडे करने की जो कल्पना की थी, उसी प्रकार की कल्पना यहां भी करने की हैं, फिर एक-एक बालाग्र को 100-100 वर्ष के बाद बाहर निकालने पर जब कुआँ खाली हो जाय, उस काल को सूक्ष्म अद्धा पल्योपम कहा जाता हैं ।

इस 10 कोटाकोटि सूक्ष्म अद्धा पल्योपम का एक सागरोपम होता है ।

इस सूक्ष्म अद्धा पल्योपम व सागरोपम द्वारा नरक आदि जीवों की आयु-स्थिति तथा जीवों की स्वकाय स्थिति को मापा जाता है ।

बादर क्षेत्र पल्योपम

एक योजन लंबे-चोडे और गहरे कुएँ को 7 दिन के युगलिक के बाल के सात बार आठ-आठ टुकडे कर ठूंस ठूंस कर भर दिया जाए ।

उस पल्य में रहे प्रत्येक रोमखंड में असंख्य असंख्य आकाश प्रदेश अंदर व बाहर से स्पर्श करके और स्पर्श किए बिना रहे हुए है ।

स्पर्श करके रहे हुए आकाश प्रदेशों की अपेक्षा स्पर्श नहीं किए आकाश प्रदेश असंख्य गुणा अधिक है ।

उन स्पृष्ट बद्ध आकाश प्रदेशों को प्रत्येक समय में एक-एक आकाश-प्रदेश बाहर निकालने पर जितने समय में वे सभी आकाश प्रदेश खाली हो जाय, उस काल को बादर क्षेत्र पल्योपम कहते है । यह पल्योपम असंख्य कालचक्र प्रमाण है । ऐसे 10 कोटाकोटि पल्योपम का एक बादर क्षेत्र सागरोपम होता है ।

सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम

एक योजन लंबे-चोडे और गहरे कुएं को 7 दिन के युगलिक के बाल के 7 बार आठ-आठ टुकडे कर ठुंस ठुंस कर भरा जाय । फिर भी उन बालों के बीच में असंख्य आकाश प्रदेश रहे हुए है ।

बालों के स्पृष्ट आकाश प्रदेशों से अस्पृष्ट आकाश प्रदेश असंख्य गुण है ।

उस कुएं में स्पृष्ट और अस्पृष्ट सभी आकाश प्रदेशों को प्रति समय बाहर निकालने पर जब वह कुआं खाली हो जाय, उस काल को सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम कहते है, यह पल्योपम बादर क्षेत्र पल्योपम से असंख्य गुणा प्रमाणवाला है । 10 कोटाकोटि सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम का 1 सूक्ष्म क्षेत्र सागरोपम होता है । इस सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम-सागरोपम का उपयोग त्रस आदि जीवों की संख्या जानने के लिए किया जाता है ।

गर्भज तिर्यंचों का उत्कृष्ट आयुष्य

जलयर उर भुयगाणं, परमाऊ होई पुव्वकोडीओ ।
पक्खीणं पुण भणिओ, असंखभागो य पलियस्स ।।37।।

शब्दार्थ :- जलयर=जलचर **उर=**उर परिसर्प **भुयगाणं=**भुज परिसर्प **परमाउ=**उत्कृष्ट आयुष्य **होई=**होता है । **पूव्वकोडी=**पूर्व करोड़ **उ=**तथा **पक्खीणं=**पक्षियों का **पुण=**तथा **भणिओ=**कहा गया है **असंखभागो=**असंख्यातवाँ भाग **पलियस्स=**पल्योपम का ।

भावार्थ :- जलचर, उर परिसर्प तथा भुज परिसर्प जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य एक करोड़ पूर्व वर्ष का होता है तथा पक्षियों का उत्कृष्ट आयुष्य पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग जितना कहा गया हैं ।

विवेचन :- जलचर संमूर्च्छिम और गर्भज दोनों का उत्कृष्ट आयुष्य 1 करोड़ पूर्ववर्ष प्रमाण है ।

गर्भज चतुष्पद का उत्कृष्ट आयुष्य 1 करोड़ पूर्व वर्ष और संमूर्च्छिम चतुष्पद का उत्कृष्ट आयुष्य 84000 वर्ष है ।

गर्भज उर परिसर्प का उत्कृष्ट आयुष्य 1 करोड़ पूर्व वर्ष और संमूर्च्छिम उर परिसर्प का उत्कृष्ट आयुष्य 53000 वर्ष है ।

गर्भज भुज परिसर्प का उत्कृष्ट आयुष्य 1 करोड़ पूर्व वर्ष और संमूर्च्छिम भुज परिसर्प का उत्कृष्ट आयुष्य 42000 वर्ष है ।

गर्भज खेचर का उत्कृष्ट आयुष्य पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग और संमूर्च्छिम खेचर का उत्कृष्ट आयुष्य 72000 वर्ष है ।

1 पूर्व=70 लाख 56 हजार करोड़ वर्ष ।

तिर्यंचो का उत्कृष्ट आयुष्य

जीव	आयुष्य
1) संमुर्च्छिम जलचर	1 क्रोड पूर्व वर्ष
2) गर्भज जलचर	1 क्रोड पूर्व वर्ष
3) संमुर्च्छिम उपरिसर्प	53000 वर्ष
4) गर्भज उरपरिसर्प	1 क्रोड पूर्व वर्ष
5) संमुर्च्छिम भूजपरिसर्प	42000 वर्ष
6) गर्भज भूज परिसर्प	1 क्रोड पूर्व वर्ष
7) संमुर्च्छिम चतुष्पद	84000 वर्ष
8) गर्भज चतुष्पद	1 क्रोड पूर्व वर्ष
9) संमुर्च्छिम खेचर	72000 वर्ष
10) गर्भज खेचर	पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग

सव्वे सुहुमा साहारणा य, संमुच्छिमा मणुस्सा य ।
उक्कोस जहन्नेणं, अंत-मुहुत्तं चिय जियंति ।।38।।

शब्दार्थ :- सव्वे=सभी **सुहुमा=**सूक्ष्म **साहारणा=**साधारण वनस्पतिकाय **य=**तथा **संमुच्छिमा=**संमूर्च्छिम **मणुस्सा=**मनुष्य **य=**तथा **उक्कोस=**उत्कृष्ट **जहन्नेणं=**जघन्य से **अंतमुहुत्तं=**अन्तर्मुहूर्त **चिय=**ही **जियंति=**जीते हैं ।

भावार्थ :- सभी सूक्ष्म जीव, साधारण वनस्पतिकाय के जीव और संमूर्च्छिम मनुष्यों का जघन्य और उत्कृष्ट आयुष्य एक अन्तर्मुहूर्त मात्र ही होता है ।

विवेचन :- चौदह राजलोक में बाल के अग्र भाग जितना भी स्थान ऐसा नहीं है, जहाँ सूक्ष्म जीव नहीं हों । सूक्ष्म पृथ्वीकाय, सूक्ष्म अप्काय, सूक्ष्म तेऊकाय, सूक्ष्म वायुकाय और सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकाय के जीव चौदह राजलोक में सर्वत्र रहे हुए हैं । इन जीवों का जघन्य और उत्कृष्ट आयुष्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही होता है ।

इसी प्रकार मनुष्य के मल, वीर्य, श्लेष्म, पित्त, पसीना आदि चौदह अशुचि स्थानों में संमूर्च्छिम मनुष्य पैदा होते हैं, इनके शरीर की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी होती है । ये जीव भी आँखों से दिखाई नहीं देते हैं । ये जीव स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं करते हैं अर्थात् अपर्याप्त अवस्था में ही इन जीवों की मृत्यु हो जाती है । इन जीवों का भी जघन्य और उत्कृष्ट आयुष्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही होता है ।

दो द्वारों का उपसंहार

ओगाहणाउ-माणं, एवं संखेवओ समक्खायं ।
जे पुण इत्थ विसेसा, विसेस सुत्ताउ ते नेया ।।39।।

शब्दार्थ :- ओगाहणा=अवगाहना **आउ=**आयुष्य **माणं=**प्रमाण **एवं=**इस प्रकार **संखेवओ=**संक्षेप से **समक्खायं=**कहा गया **जे=**जो **पुण=**पुनः **इत्थ=**यहाँ **विसेसा=**विशेष है **विसेस सुत्ताउ=**विशेष सूत्रों से **ते=**वह **नेया=**जानना चाहिए ।

भावार्थ :- इस प्रकार अवगाहना और आयुष्य का प्रमाण संक्षेप में बतलाया है । इसमें जो विशेष है, वह विशेष सूत्रों से जानना चाहिए ।

विवेचन :- ग्रंथकार महर्षि ने इस ग्रंथ की रचना संक्षिप्त रुचिवाले जीवों के लिए की है ।

तत्त्वज्ञान के महासागर में डुबकी लगाने के पूर्व यह नदी तुल्य तत्त्वज्ञान का प्रवेश द्वार है । प्रारंभ में संक्षेप में तत्त्वज्ञान की सामान्य जानकारी मिल जाय तो फिर तत्त्वज्ञान के सूक्ष्म पदार्थों की जिज्ञासा बढ़ सकती है ।

छोटे बच्चे को प्रारंभ में 1-2 रोटी ही खिलाई जाती है, फिर ज्यों-ज्यों उसकी उम्र बढ़ती है त्यों-त्यों उसे अधिक-अधिक खुराक दिया जाता है ।

बस, इसी प्रकार इस **जीव विचार** नाम के छोटे से प्रकरण ग्रंथ में बहुत ही संक्षेप में ग्रंथकार महर्षि ने अवगाहना और आयुष्य के दो द्वारों का संक्षेप में वर्णन किया है, अब जिसे इस विषय में अधिक जिज्ञासा हो, उसे इस विषय का निर्देश करनेवाले **प्रज्ञापना** आदि ग्रंथों का अभ्यास करना चाहिए ।

स्वकाय स्थिति द्वार-एकेन्द्रियों की स्वकाय स्थिति

एगिंदिया य सव्वे, असंख उस्सप्पिणी सकायम्मि ।
उववज्जंति चयंति य, अणंतकाया अणंताओ ।।40।।

शब्दार्थ :- एगिंदिया=एकेन्द्रिय **य=**और **सव्वे=**सभी **असंख=**असंख्य **उस्सप्पिणी-सप्पिणी=**उत्सर्पिणी अवसर्पिणी **सकायम्मि=**स्वकाय में **उववज्जंति=**उत्पन्न होते हैं **चयंति=**नष्ट होते हैं **य=**और **अणंतकाया=**अनंतकाय जीव **अणंताओ=**अनंत (उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी)

भावार्थ :- सभी एकेन्द्रिय अपनी काय में असंख्य उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल तक और अनंतकाय (साधारण वनस्पतिकाय) अनंत उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल तक स्वकाय में उत्पन्न होते हैं और मरते हैं ।

विवेचन :- स्वकाय अर्थात् अपनी ही काय में, जैसे कोई जीव कहीं से मरकर पृथ्वीकाय में उत्पन्न हुआ तो अब वह जीव पुनः मरकर पुनः पृथ्वीकाय में ही जन्म ले और मरे तो उस जीव का पृथ्वीकाय में ही जन्म-मरण कितने काल तक हो सकता है । अर्थात् पृथ्वीकाय का जीव मरकर कब तक पृथ्वीकाय में ही जन्म-मरण कर सकता है । इसका जवाब देते हुए कहते हैं कि साधारण वनस्पतिकाय को छोड़कर सभी पृथ्वीकाय, तेउकाय, वायुकाय और प्रत्येक वनस्पतिकाय जीवों की स्वकाय स्थिति असंख्य उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल है अर्थात् वह जीव इतने लंबे समय तक उसी काय में रह सकता है ।

जबकि साधारण वनस्पतिकाय की कायस्थिति अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल है । अर्थात् साधारण वनस्पति में रहा जीव अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तक साधारण वनस्पतिकाय में ही रह सकता है ।

उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी :- दस कोटा कोटी सागरोपम काल को एक उत्सर्पिणी या अवसर्पिणी काल कहते हैं ।

कोटा कोटी अर्थात् एक करोड़ को एक करोड़ से गुणा करने पर जो संख्या आती है, उसे कोटाकोटि कहते हैं । पुनः उस संख्या को 10 से गुणा करने पर जो संख्या आती है, उसे 10 कोटाकोटि कहा जाता है ।

विकलेन्द्रिय व पंचेन्द्रिय की स्वकाय स्थिति

संखिज्ज समा विगला, सत्तट्ठभवा पणिंदि तिरि मणुआ ।
उववज्जंति सकाए, नारय देवा य नो चेव ।।41।।

शब्दार्थ :- संखिज्ज समा=संख्याता वर्ष **विगला=**विकलेन्द्रिय जीव **सत्तट्ठ भवा=**सात आठ भव **पणिंदि=**पंचेन्द्रिय **तिरि मणुआ=**तिर्यंच और मनुष्य **उववज्जंति=**उत्पन्न होते हैं **सकाए=**स्वकाय में **नारय=**नारक **देवा=**देव **य=**और **नो=**नहीं **चेव=**ही ।

भावार्थ :- विकलेन्द्रिय जीव संख्याता वर्षों तक स्वकाय में उत्पन्न हो सकते हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यों की स्वकाय स्थिति सात-आठ भव है। देव व नारक मरकर पुनः देव व नारक नहीं बनते हैं ।

विवेचन :- द्वीइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों की स्वकाय स्थिति संख्याता वर्ष है । अर्थात् संख्याता वर्षों तक वे जीव मरकर पुनः उसी द्वीन्द्रिय आदि में उत्पन्न हो सकते हैं ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच की स्वकाय स्थिति सात-आठ भव है ।

उदा. कोई घोड़ा मरकर पुनः घोडा बने या गधा, ऊंट आदि बने तो निरंतर सात भव कर सकता है, आठवाँ भव यदि करे तो युगलिक तिर्यंच में चतुष्पद या खेचर का ही भव करेगा, क्योंकि पूर्व करोड़ वर्ष से अधिक आयुष्यवाले युगलिक ही होते हैं । चतुष्पद और खेचर को छोड़कर इतना अधिक आयुष्य अन्य किसी का नहीं होता है । अर्थात् तिर्यंचों में निरंतर होनेवाला आठवाँ भव तो युगलिक का ही होता है ।

उसी प्रकार मनुष्य मरकर पुनः पुनः मनुष्य बने तो निरंतर 7 बार बन सकता है-आठवीं बार मनुष्य का भव मिले तो युगलिक मनुष्य का ही मिलता है ।

देव व नारक जीवों की स्वकाय स्थिति नहीं है, क्योंकि देव मरकर पुनः दूसरे ही भव में देव नहीं बनता है और नारक का जीव भी मरकर पुनः दूसरे ही भव में नारक नहीं बनता है ।

प्राण द्वार–एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय के प्राण

दसहा जिआण पाणा, इंदिय ऊसास आउबल रूवा ।
एगिंदिएसु चउरो, विगलेसु छ सत्त अट्ठेव ।।42।।

शब्दार्थ :- दसहा=दश प्रकार के **जिआण=**जीवों के **पाणा=**प्राण **इंदिय=**इंद्रियाँ **उसास=**श्वासोच्छ्वास **आउ=**आयुष्य **बलरूवा=**बलस्वरूप **एगिंदिएसु=**एकेन्द्रियों में **चउरो=**चार **विगलेसु=**विकलेन्द्रियों में **छ=**छह **सत्त=**सात **अट्ठेव=**आठ ।

भावार्थ :- जीवों के 10 प्राण होते हैं । पाँच इन्द्रियाँ, श्वासोच्छ्वास, आयुष्य और मनबल, वचनबल और कायबल । एकेन्द्रियों में चार तथा विकलेन्द्रिय में क्रमशः छ, सात और आठ प्राण होते हैं ।

विवेचन :- जीवन जीने की आत्मा की शक्ति विशेष को प्राण कहते हैं । आत्माओं में ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि भाव-प्राण होते हैं ।

संसारी जीवों में दस प्राण होते हैं । इन प्राणों के आधार पर ही संसारी जीव अपना जीवन जीते हैं । इन्हें द्रव्य प्राण भी कहते हैं । इन प्राणों के नाश से संसारी जीवों की मृत्यु होती है ।

तत्त्वार्थ सूत्र में हिंसा की व्याख्या करते हुए कहा है-**'प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा'** प्रमाद के योग से संसारी जीवों के प्राणों का नाश करना ही हिंसा है । सभी संसारी जीवों के ये प्राण एक समान नहीं होते हैं ।

10 प्राणों का स्वरूप

5 इन्द्रियाँ

(1) स्पर्शन इन्द्रिय :- इस इन्द्रिय से पुद्गल में रहे स्पर्श गुण का बोध होता है ।

(2) रसनेन्द्रिय :- रसनेन्द्रिय अर्थात् जीभ । इस इन्द्रिय से पुद्गल में रहे रस का बोध होता है ।

(3) घ्राणेन्द्रिय :- घ्राणेन्द्रिय अर्थात् नाक । इस इन्द्रिय से पुद्गल में रहे गंध का बोध होता है ।

(4) चक्षुरिन्द्रिय :- चक्षुरिन्द्रिय अर्थात् आँख । इस इन्द्रिय से पदार्थ में रहे रूप का बोध होता है ।

(5) श्रोत्रेन्द्रिय :- श्रोत्रेन्द्रिय अर्थात् कान ! इस इन्द्रिय से पुद्गल में रहे शब्द विषय का बोध होता है ।

तीन बल

(6) मनोबल :- जिसके बल से जीव कुछ भी सोच सकता है, विचार कर सकता है, उसे मनोबल कहते हैं ।

(7) वचनबल :- जिसके बल से जीव अपने विचारों को वाणी द्वारा व्यक्त कर सकता है, उसे वचनबल कहते हैं ।

(8) कायबल :- जीव की काया की शक्ति को कायबल कहते हैं ।

(9) आयुष्य :- आयुष्य कर्म के उदय से जीव किसी भी गति या भव में जीवन जी सकता है । यह आयुष्य भी जीव का प्राण है । यह प्राण सभी जीवों को होता है । इस प्राण के नाश के साथ ही जीव की मृत्यु हो जाती है ।

पाँच इन्द्रियों में से किसी 1-2 इन्द्रियों की हानि हो जाने से जीव की मृत्यु नहीं होती है परंतु आयुष्य की हानि हो जाय तो जीव को अवश्य मरना पड़ता है ।

(10) श्वासोच्छ्वास :- यह प्राण भी सभी जीवों को होता है । अपने जीवन को टिकाने के लिए हर जीव अवश्य श्वास लेता है ।

एकेन्द्रिय जीवों के चार प्राण, पृथ्वीकाय आदि पाँच एकेन्द्रिय जीवों के कुल चार प्राण होते हैं ।

(1) पाँच इन्द्रियों में से एक इन्द्रिय-स्पर्शेन्द्रिय ।

(2) तीन बल में से एक बल-कायबल ।

(3-4) आयुष्य और श्वासोच्छ्वास ।

द्वीन्द्रिय जीवों के छह प्राण :- द्वीइन्द्रिय जीवों के छह प्राण होते हैं । द्वीइन्द्रिय जीवों में एक इन्द्रिय रसनेन्द्रिय और एक वचन बल की वृद्धि होती है ।

त्रीन्द्रिय जीवों के सात प्राण :- त्रीन्द्रिय जीवों के सात प्राण होते हैं । द्वीन्द्रिय जीवों की अपेक्षा तेइन्द्रिय जीवों में एक घ्राणेन्द्रिय अधिक होती है ।

चतुरिन्द्रिय जीवों के आठ प्राण :- चतुरिन्द्रिय जीवों के आठ प्राण होते हैं । त्रीन्द्रिय की अपेक्षा इन जीवों में एक चक्षुरिन्द्रिय अधिक होती है ।

असंज्ञि-संज्ञी पंचेन्द्रिय के प्राण

असन्नि सन्नि पंचिंदिएसु नव दस कमेण बोधव्वा ।
तेहिं सह विप्पओगो, जीवाणं भन्नए मरणं ।।43।।

शब्दार्थ :- असन्नि=असंज्ञी (मन रहित) **सन्नि=**मनवाले **पंचिंदिएसु=**पंचेन्द्रियों में **नव=**नौ **दस=**दस **कमेण=**क्रमशः **बोधव्वा=**जानना चाहिए **तेहिं=**उनके **सह=**साथ **विप्पओगो=**वियोग **जीवाणं=**जीवों का **भन्नए=**कहा जाता है । **मरणं=**मृत्यु ।

भावार्थ :- मन रहित और मन सहित पंचेन्द्रिय जीवों में क्रमशः नौ और दस प्राण होते हैं ।

उन प्राणों का वियोग होना, उसी को मरण कहा जाता है ।

विवेचन :- संज्ञी अर्थात् मनवाले और असंज्ञी अर्थात् मन रहित । एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के जीव असंज्ञी ही होते हैं ।

पंचेन्द्रियों में कुछ मनवाले होते हैं और कुछ मन रहित भी होते हैं ।

जो मनवाले होते हैं वे संज्ञी पंचेन्द्रिय कहलाते हैं और जो मन रहित होते हैं वे असंज्ञी पंचेन्द्रिय कहलाते हैं ।

चतुरिन्द्रिय की अपेक्षा संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के एक इन्द्रिय श्रोत्रेन्द्रिय अधिक होती है ।

जो पंचेन्द्रिय प्राणी मन वाले होते हैं, उन्हें संज्ञी पंचेन्द्रिय कहते हैं, उनके सभी प्राण होते हैं । गर्भज तिर्यंच, गर्भज मनुष्य, देवता और नारक ये सभी संज्ञी पंचेन्द्रिय कहलाते हैं ।

मनुष्य के देह से अलग हुए मल, मूत्र आदि में अन्तर्मुहूर्त बाद ही असंख्य संमूर्च्छिम मनुष्य पैदा होजाते हैं जो असंज्ञी होते हैं और उनके मन नहीं होने से उनके नौ प्राण ही होते हैं ।

जीव के जो प्राण बतलाए हैं उन प्राणों के साथ वियोग होना, उसी को मरण कहा जाता है ।

उपदेश

एवं अणोर-पारे, संसारे सायरम्मि भीमम्मि ।
पत्तो अणंत-खुत्तो, जीवेहिं अपत्त-धम्मेहिं ।।44।।

शब्दार्थ :- एवं=इस प्रकार **अणोरपारे=**पार रहित **संसारे=**संसार में **सायरम्मि=**सागर में **भीमम्मि=**भयंकर **पत्तो=**प्राप्त किया है **अणंतखुत्तो=**अनंत बार **जीवेहिं=**जीवों द्वारा **अपत्तधम्मेहिं=**धर्म की प्राप्ति के अभाव में

भावार्थ :- इस भयंकर संसार सागर में धर्म की प्राप्ति के अभाव में जीवों द्वारा अनंत बार मृत्यु प्राप्त हुई है ।

विवेचन :- यह संसार अनादिकाल से है । इस संसार में जीव का अस्तित्व भी अनादि काल से है । जब तक आत्मा का मोक्ष न हो जाय तब तक इस संसार में आत्मा को जन्म-मरण की पीड़ा सहन करनी ही पड़ती है ।

संसार में जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु निश्चित ही है । इस जन्म-मरण के चक्र में से छूटने का एक मात्र उपाय वीतराग कथित शुद्ध धर्म की आराधना ही है ।

जिन-जिन पुण्यशाली आत्माओं ने इस धर्म की आराधना की, वे आत्माएँ जन्म-मरण के चक्र में से सर्वथा मुक्त हो गईं परंतु जिनको इस धर्म की प्राप्ति नहीं हुई अथवा जिन्होंने इस धर्म की अच्छी तरह से आराधना नहीं की, वे आत्माएँ इस संसार-सागर में भटकती रही हैं ।

संसार में राज्य की प्राप्ति, धन की प्राप्ति, सांसारिक भोग-सुखों की प्राप्ति या देवलोक के दिव्य सुखों की प्राप्ति दुर्लभ नहीं है, परंतु वीतराग कथित सद्धर्म की प्राप्ति तो अत्यंत ही दुर्लभ है ।

सद्धर्म की प्राप्ति के अभाव में आत्मा के भव भ्रमण का अंत कदापि संभव नहीं है, अतः जो आत्मा भवभ्रमण से थक चुकी है अथवा भव के भ्रमण का अंत लाना चाहती हैं उन्हें वीतराग कथित धर्म की अवश्य आराधना करनी चाहिए ।

भव-भ्रमण का अंत लाने का एक मात्र सामर्थ्य वीतराग-धर्म की आराधना में ही है, अतः महान् पुण्योदय से ऐसे सर्वश्रेष्ठ धर्म की प्राप्ति हो गई है तो प्रमाद छोड़कर उसकी आराधना कर लेनी चाहिए ।

योनि द्वार

तह चउरासी लक्खा, संखा जोणीण होइ जीवाणं ।
पुढवाइण चउण्हं, पत्तेयं सत्त सत्तेव ।।45।।

शब्दार्थ :- तह=तथा **चउरासी=**चौरासी **लक्खा=**लाख **संखा=**संख्या **जोणीणं=**योनियों की **होइ=**होती है **जीवाणं=**जीवों की **पुढवाइणो=**पृथ्वीकाय आदि **चउण्हं=**चार **पत्तेयं=**प्रत्येक की **सत्त=**सात **सत्तेव=**सात ही ।

भावार्थ :- जीवों की योनियों की संख्या 84 लाख है पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय की 7-7 लाख योनियाँ हैं ।

विवेचन :- जीव के उत्पत्ति स्थान को योनि कहते हैं । जिस प्रकार तपा हुआ लोहे का गोला पानी के जलबिंदुओं को चूस लेता है, उसी प्रकार अपने पूर्व शरीर को छोड़कर उत्पत्ति के नए स्थल में जीव अपने शरीर की रचना के लिए योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है । जीव की उत्पत्ति के उस स्थल को योनि कहते हैं ।

योनि के मुख्य 9 भेद हैं

1) सचित्त योनि :- जीववाली योनि को सचित्त योनि कहते हैं । उदा. जीवित मनुष्य के शरीर में पैदा हुए कृमि आदि कीड़े ।

2) अचित्त योनि :- जीव रहित योनि को अचित्त योनि कहते हैं । उदा. सूखी लकड़ी में उत्पन्न हुए कीड़े ।

3) सचित्त-अचित्त योनि :- सचित्त-अचित्त के मिश्रणवाली योनि को सचित्त-अचित्त योनि कहते हैं । जैसे मनुष्य की योनि में जो शुक्र-रक्त आदि के पुद्गल आत्मप्रदेश से संबद्ध हों वे सचित्त कहलाते हैं और जो संबद्ध न हों, वे अचित्त कहलाते हैं । ऐसी योनि सचित्त-अचित्त योनि कहलाती है ।

4) शीतयोनि :- जिस योनि का स्पर्श ठंडा हो, उसे शीतयोनि कहते हैं ।

5) उष्ण योनि :- जिस योनि का स्पर्श गर्म हो, उसे उष्ण योनि कहते हैं ।

6) शीतोष्ण योनि :- जिस योनि का स्पर्श न ज्यादा ठंडा हो, न ज्यादा गर्म हो, उसे शीतोष्ण योनि कहते हैं ।

7) संवृतयोनि :- जो योनि ढकी हुई हो उसे संवृत योनि कहते हैं । जैसे-देवता की शय्या वस्त्र से ढकी होती है ।

8) विवृतयोनि :- जो योनि खुली हो, उसे विवृतयोनि कहते हैं जैसे-जलाशय में उत्पन्न जीवों की योनि ।

9) संवृत-विवृत योनि :- जो योनि कुछ अंश में ढकी हो और कुछ अंश में खुली हो, उसे संवृत-विवृत कहते हैं । जैसे मनुष्य की योनि ।

जीवों की योनियाँ

1) एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय जीव, संमूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय व संमूर्च्छिम मनुष्य की योनि सचित्त, अचित्त व सचित्त-अचित्त तीनों प्रकार की होती है ।

2) गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच व मनुष्य की योनि मिश्र ही होती है ।

3) भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष तथा वैमानिक देवों की तथा नारकों की योनि अचित्त ही होती है ।

मनुष्य-स्त्री योनि के तीन प्रकार

1) कूर्मोन्नत योनि :- कछुए की पीठ की तरह जो योनि हो उसे कूर्मोन्नत योनि कहते हैं । अरिहंत, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव की माता की योनि कूर्मोन्नत योनि होती है ।

2) शंखावर्त :- शंख के आवर्त की तरह जो योनि हो, उसे शंखावर्त योनि कहते हैं । चक्रवर्ती के स्त्रीरत्न की योनि शंखावर्त होती है ।

3) वंशीपत्र :- बाँस के दो संयुक्त पत्र के आकारवाली योनि को वंशीपत्र योनि कहते हैं। उपर्युक्त दो को छोड़ अन्य स्त्रियों की योनि, वंशीपत्र योनि होती है।

84 लाख योनियाँ

यद्यपि जीवों के उत्पत्ति स्थान असंख्य हैं, परंतु स्पर्श, गंध, वर्ण आदि समानता के अनुसार योनियों के 84 लाख प्रकार बतलाए हैं। इस गाथा में पृथ्वीकाय आदि की योनियाँ बतलाई हैं।

काय	योनि
पृथ्वीकाय	7 लाख
अप्काय	7 लाख
तेउकाय	7 लाख
वायुकाय	7 लाख

दस पत्तेय-तरूणं, चउदस लक्खा हवंति इयरेसु।
विगलिंदिएसु दो दो, चउरो पंचिंदि-तिरियाणं ।।46।।

शब्दार्थ :- दस=दश लाख **पत्तेय तरूणं=**प्रत्येक वनस्पति काय **चउदसलक्खा=**चौदह लाख **हवंति=**होते हैं **इयरेसु=**इतर (साधारण वनस्पति) **विगलिंदिएसु=**विकलेन्द्रियों में **दो-दो=**दो-दो **चउरो=**चार **पंचिंदि=**पंचेन्द्रिय **तिरियाणं=**तिर्यंचों की।

भावार्थ :- प्रत्येक वनस्पतिकाय की 10 लाख, साधारण वनस्पतिकाय की 14 लाख, विकलेन्द्रिय जीवों में प्रत्येक की दो-दो एवं पंचेन्द्रिय तिर्यंच की चार लाख योनियाँ हैं।

विवेचन :-

काय	योनि संख्या
प्रत्येक वनस्पतिकाय	10 लाख
साधारण वनस्पतिकाय	14 लाख
दो इन्द्रिय जीव	2 लाख
तीन इन्द्रिय जीव	2 लाख
चार इन्द्रिय जीव	2 लाख
तिर्यंच पंचेन्द्रिय	4 लाख

चउरो चउरो नारय, सुरेसु मणुआण चउदस हवंति ।
संपिंडिया य सव्वे, चुलसी लक्खा उ जोणीणं ।।47।।

शब्दार्थ :- चउरो चउरो=चार-चार **नारय=**नारक **सुरेसु=**देवता में **मणुआण=**मनुष्य की **चउदस=**चौदह **हवंति=**होती हैं **संपिंडिआ=**इकट्ठा करने पर **य=**और **सव्वे=**सभी **चुलसी=**चौरासी **लक्खा=**लाख **उ=**और **जोणीणं=**योनियों का ।

भावार्थ :- नारक और देवों की 4-4 लाख तथा मनुष्य की 14 लाख योनियाँ हैं । सब मिलाकर कुल 84 लाख योनियाँ होती हैं ।

विवेचन :-

जीव	**योनि**
नारक	4 लाख
देव	4 लाख
मनुष्य	14 लाख

इस प्रकार ये सब मिलकर कुल 84 लाख योनियाँ होती हैं ।

सिद्धाणं नत्थि देहो, न आउ कम्मं न पाण-जोणीओ ।
साइ अणंता तेसिं, ठिई जिणिंदागमे भणिया ।।48।।

शब्दार्थ :- सिद्धाणं=सिद्धों के **नत्थि=**नहीं है **देहो=**शरीर **न=**नहीं **आउकम्मं=**आयुष्य कर्म **न=**नहीं **पाण जोणीओ=**प्राण और योनि **साइ=**सादि **अणंता=**अनंत **तेसिं=**उनकी **ठिई=**स्थिति **जिणिंदागमे=**जिनेश्वर के आगम में **भणिया=**कही गई है ।

भावार्थ :- सिद्ध भगवंतों के देह नहीं है, आयुष्य कर्म नहीं है, प्राण और योनि नहीं हैं । उनकी स्थिति सादि-अनंत है, ऐसा जिनेश्वर के आगम में कहा गया है ।

विवेचन :- सर्वज्ञ-सर्वदर्शी जिनेश्वर भगवंतों ने अपने केवलज्ञान के बल से देखकर जगत् का जो स्वरूप बतलाया है, उसी स्वरूप का वर्णन जिन-आगमों में देखने को मिलता है । अर्थात् जिन आगमों में जो कुछ भी कहा गया है, वह जिनेश्वर भगवंतों के द्वारा प्रत्यक्ष देखा हुआ ही कहा गया है, अतः उनमें असत्य का कहीं अंश भी नहीं है ।

जिन-आगमों की वाणी यह परमात्मा की ही साक्षात् वाणी है अर्थात् वह पूर्णरूप से श्रद्धा करने योग्य है ।

उन जिनागमों में कहा गया है कि सिद्ध भगवंतों के राग-द्वेष रूप भाव कर्मों का अभाव होने से उनके द्रव्यकर्म नहीं हैं । द्रव्य कर्मों का अभाव होने से उनके शरीर भी नहीं है । शरीर का अभाव होने से उनके कोई आयुष्य कर्म भी नहीं है । सिद्धों के शरीर का अभाव होने से प्राण और योनि भी नहीं है ।

उनकी स्थिति अर्थात् अस्तित्व सादि-अनंत है ।

यद्यपि मोक्ष का अस्तित्व अनादि अनंत है, फिर भी किसी व्यक्तिगत सिद्ध की अपेक्षा से निर्वाणपद प्राप्त करने पर उस आत्मा का सिद्ध पद प्रारंभ होगा, परंतु वह पद अनंत काल तक रहेगा ।

संसार से मुक्त हुई आत्मा का अब पुनः संसार में आगमन नहीं है । उसका पुनः जन्म नहीं, मरण नहीं है ।

मुक्तात्मा की सदा काल के लिए एक ही स्थिति है । उसके स्वरूप में कभी भी, कुछ भी परिवर्तन आनेवाला नहीं है ।

अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अव्याबाध सुख, वीतरागता, अक्षयस्थिति, अरूपता, अगुरुलघुता एवं अनंतवीर्य गुण के धारक ऐसे सिद्ध भगवंतों को कोटि-कोटि वंदन हो ।

उपदेश

काले अणाइ-निहणे, जोणि गहणम्मि भीसणे इत्थ ।
भमिया भमिहिंति चिरं, जीवा जिण-वयण-मलहंता ।।49।।

शब्दार्थ :- काले=काल में **अणाइ निहणे=**अनादि निधन **जोणि=**योनि **गहणम्मि=**गहन **भीसणे=**भयंकर **इत्थ=**यहाँ **भमिया=**भ्रमण किया है **भमिहिंति=**भ्रमण करेगा **चिरं=**दीर्घकाल तक **जीवा=**जीव **जिणवयणं=**जिनवचन **अलहंता=**प्राप्त नहीं होने से ।

भावार्थ :- जिनेश्वर देव के वचन को प्राप्त नहीं किए हुए जीव, योनियों से गहन और भयंकर इस संसार में अनादि निधन ऐसे काल प्रवाह में लंबे समय तक भटका है और भटकेगा ।

विवेचन :- यह संसार अनादिकाल से है और अनंत काल तक रहेगा । इस संसार में आत्मा का अस्तित्व भी अनादिकाल से है और अनंतकाल तक रहेगा ।

संसार में आत्मा और कर्म का संयोग भी अनादिकाल से है ।

इस संसार में आत्मा राग-द्वेष के अशुभ भाव कर-करके नए-नए कर्मों का बंध करती रहती है । उन कर्मों के उदय से आत्मा इस संसार में नए-नए जन्म धारण करती रहती है...और 84 लाख योनियों में जहाँ-तहाँ भटकती रहती है । एक जन्म से दूसरा जन्म, एक योनि से दूसरी योनि, इस प्रकार अनादिकाल से आत्मा संसार में भटकती रहती है । आत्मा के उस भटकाव का अंत लाने का एक मात्र उपाय जिन-वचन की आराधना, उपासना ही है ।

जिन-जिन पुण्यात्माओं ने जिनवचन की आराधना-उपासना की, वे आत्माएँ जल्दी ही संसार के भव-भ्रमण से सदा काल के लिए मुक्त हो गईं, परंतु जिन आत्माओं को अभी तक जिनवचन की प्राप्ति नहीं हुई, वे आत्माएँ इस भीषण संसार में जहाँ-तहाँ भटकती रही हैं ।

जिनवचन की प्राप्ति भी एकदम सुलभ नहीं है । किसी पुण्यवंत आत्मा को ही पुण्योदय से इस जिनवचन की प्राप्ति होती है ।

ता संपइ संपत्ते, मणुअत्ते दुल्लहे वि सम्मत्ते ।
सिरि संति सूरि सिट्ठे, करेह भो उज्जमं धम्मे ।।50।।

शब्दार्थ :- ता=अतः **संपइ=**अभी **संपत्ते=**प्राप्त हुआ है तो **मणुअत्ते=**मनुष्यपना **दुल्लहे=**दुर्लभ **वि=**भी **संमत्ते=**सम्यक्त्व **सिरि=**श्री **संतिसूरि=**शांतिसूरि **सिट्ठे=**उपदिष्ट **करेह=**करो **भो=**हे **उज्जमं=**उद्यम **धम्मे=**धर्म में ।

भावार्थ :- हे भव्यात्माओ ! जब दुर्लभ ऐसा मनुष्य भव और सम्यक्त्व प्राप्त हुआ है तो ज्ञानश्री और उपशम आदि गुणों से विभूषित ऐसे पूज्यश्री के द्वारा उपदिष्ट धर्म में उद्यम करो ।

विवेचन :- हे भव्यात्माओ !

महान् पुण्योदय से तुम्हें यह मनुष्य भव और सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई है ।

इस संसार में जीवों की संख्या अनंतानंत है ।

पृथ्वीकाय में कुल जीव असंख्य हैं ।

अप्काय में कुल जीव असंख्य हैं ।

तेउकाय में कुल जीव असंख्य हैं ।

वायुकाय में कुल जीव असंख्य हैं ।

प्रत्येक वनस्पतिकाय में कुल जीव असंख्य हैं ।

द्वीन्द्रिय में कुल जीव असंख्य हैं ।

त्रीन्द्रिय में कुल जीव असंख्य हैं ।
चतुरिन्द्रिय में कुल जीव असंख्य हैं ।
नारक के कुल जीव असंख्य हैं ।
देवता के कुल जीव असंख्य हैं ।
पंचेन्द्रिय तिर्यंच के कुल जीव असंख्य हैं ।
संमूर्च्छिम मनुष्य के कुल जीव असंख्य हैं ।
साधारण वनस्पतिकाय के कुल जीव अनंत हैं ।
जबकि गर्भज मनुष्य के कुल जीव संख्यात ही हैं ।

इस प्रकार विचार करते हैं, तब पता चलता है कि मनुष्य जन्म कितना दुर्लभ है ।

मनुष्य मरकर 24 दंडकों में जा सकता है, जबकि तेउकाय और वायुकाय को छोड़कर सभी 22 दंडक के जीव मरकर मनुष्य भव प्राप्त कर सकते हैं ।

मनुष्य मर्यादित संख्या में हैं, जबकि मनुष्य भव को प्राप्त करने वाले उम्मीदवार अनंतजीव हैं ।

जिस प्रकार लॉटरी खरीदनेवाले बहुत होते हैं, परंतु वह लॉटरी तो किसी एक को ही लगती है, उसी प्रकार मनुष्य भव के उम्मीदवार तो बहुत से जीव हैं, परंतु वह किसी पुण्यशाली को ही प्राप्त होता है ।

देवलोक में असंख्य देवता हैं परंतु अगले जन्म में उनको भी मनुष्य भव सुलभ नहीं है । अधिकांश देवता भी मरकर पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय रूप एकेन्द्रिय में चले जाते हैं । उनके लिए भी मनुष्य भव की प्राप्ति सुलभ नहीं है ।

मनुष्य भव की प्राप्ति के बाद भी सम्यक्त्व की प्राप्ति सुलभ कहाँ है ?

सम्यक्त्व के अभाव में घोर पापाचरण करके अधिकांश मनुष्य भी मरकर नरक व तिर्यंच गति में चले जाते हैं ।

मिथ्यात्व का ही यदि पोषण होता हो तो उसके लिए तो यह मनुष्य भव भी दुर्गति स्वरूप ही है, क्योंकि मिथ्यात्व की उपस्थिति में वह आत्मा हिंसा आदि पाप भी अत्यंत निर्दयता पूर्वक करती है और उन पापों का आचरण कर वह अपने भावी अनर्थ की लंबी परंपरा खड़ी कर देती है ।

एसो जीववियारो, संखेव-रुइण जाणणा हेऊ ।
संखित्तो उद्धरिओ, रुद्दाओ सुय-समुद्दाओ ।।51।।

शब्दार्थ :- एसो=यह **जीववियारो=**जीवविचार **संखेव रुइण=**संक्षेप रुचिवाले **जाणणा हेऊ=**जानने के हेतु से **संखित्तो=**संक्षेप से **उद्धरिओ=**उद्धार किया है **रुद्दाओ=**अपार **सुयसमुद्दाओ=**श्रुत समुद्र में से ।

भावार्थ :- अतिविस्तृत ऐसे श्रुतसमुद्र में से संक्षेप करके, यह **जीव विचार,** नाम का प्रकरण ग्रंथ संक्षेप रुचिवाले जीवों के लिए मैंने रचा है ।

विवेचन :- 50 गाथाओं के माध्यम से जैन दर्शन को मान्य जीवों के स्वरूप के वर्णन की समाप्ति करते हुए ग्रंथकार महर्षि प्रस्तुत-अंतिम गाथा में **जीवविचार** प्रकरण ग्रंथ का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि मैंने अपनी मति-कल्पना के आधार पर इस ग्रंथ की रचना नहीं की है, बल्कि श्रुतरूपी जो महासागर है, उसमें डुबकी लगाकर मैंने इस प्रकरण-ग्रंथ की रचना की है।

जैन दर्शन में स्वच्छंद मति को कुछ भी स्थान नहीं है ।

सच्चा जैन भी वो ही कहलाता है जो जैन मत को मान्य वचन का ही उच्चारण करता है, जैनाचार्य महर्षि वीतराग-सिद्धांत को मान्य आचार, विचार और उच्चार को ही स्वीकार करते हैं । वे कभी जैन मत से विपरीत आचार-विचार और उच्चार नहीं करते हैं ।

प्रकरण ग्रंथों की रचना दो प्रकार से होती है, संक्षेप में और विस्तार से ।

सभी मनुष्यों के क्षयोपशम एक समान नहीं होते हैं । कुछ जीव ऐसे होते हैं, जिन्हें किसी पदार्थ का वर्णन संक्षेप से ही समझाया जा सकता है । संक्षेप रुचिवाले जीवों को खूब विस्तार से समझाया जाय तो उन्हें कंटाला आता है, उन्हें कुछ समझ में भी नहीं आता है और उन्हें जिनवचनों के प्रति ही अरुचिभाव पैदा हो जाता है ।

परंतु कुछ जीव विस्तृत रुचिवाले भी होते हैं । विस्तार रुचिवाले जीवों को किसी भी पदार्थ का वर्णन विस्तार से ही करना पड़ता है ।

विस्तार रुचिवाले जीवों को संक्षेप में समझाया जाय तो भी उन्हें समझ में नहीं आता है और संक्षेप रुचिवाले जीवों को विस्तार से समझाया जाय तो भी समझ में नहीं आता है ।

प्रस्तुत ग्रंथ संक्षिप्त रुचिवाले जीवों के लिए है, क्योंकि इस प्रकरण में बहुत ही संक्षेप में जीवों का स्वरूप समझाया गया है ।

ग्रंथकार महर्षि ने संक्षिप्त रुचिवाले जीवों को नजर समक्ष रखकर ही प्रस्तुत प्रकरण ग्रंथ की रचना की है ।

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर मरुधररत्न, पू.आ.श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा मुख्यतया हिन्दी भाषा में आलेखित 225 पुस्तकों में से उपलब्ध एवं अवश्य पठनीय साहित्य-सूची

Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य	Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	चिंतन का अमृत-कुंभ	80/-	34.	अमृत रस का प्याला	300/-
2.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-1)	100/-	35.	श्रावक का गुण सौंदर्य	125/-
3.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-2)	100/-	36.	ध्यान साधना	40/-
4.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-3)	125/-	37.	आग और पानी-भाग-1-2	115/-
5.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-4)	135/-	38.	शांत सुधारस-हिन्दी -भाग-1-2	140/-
6.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	125/-	39.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	40/-
7.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	85/-	40.	आओ संस्कृत सीखें भाग-1	100/-
8.	विविध-तपमाला	100/-	41.	आओ संस्कृत सीखें भाग-2	220/-
9.	विवेकी बनो	90/-	42.	प्रेरक-प्रवचन	80/-
10.	बीसवी सदी के महान योगी	300/-	43.	दंडक सूत्र	50/-
11.	परम-तत्व की साधना भाग-3	160/-	44.	जीव विचार विवेचन	60/-
12.	श्रमण-क्रिया के मुख्य सूत्र	200/-	45.	नव तत्त्व-विवेचन	60/-
13.	प्रवचन-वर्षा	60/-	46.	लघु संग्रहणी (जैन भूगोल)	100/-
14.	मोक्ष-मार्ग के कदम	120/-	47.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	240/-
15.	आओ श्रावक बनें !	25/-	48.	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	120/-
16.	व्यसन-मुक्ति	100/-	49.	गणधर-संवाद	80/-
17.	श्रावक जीवन दर्शन	250/-	50.	आओ ! उपधान पौषध करें !	55/-
18.	शंका-समाधान (भाग-4)	60/-	51.	नवपद आराधना	80/-
19.	जैन-महाभारत	130/-	52.	पहला कर्मग्रंथ	100/-
20.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (1 से 9)	300/-	53.	दूसरा-तीसरा कर्मग्रंथ	55/-
21.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (10 से 40)	275/-	54.	पाँचवाँ कर्मग्रंथ	100/-
22.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (41 से 57)	275/-	55.	संस्मरण	50/-
23.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (58 से 80)	280/-	56.	भव आलोचना	10/-
24.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव बलदेव	50/-	57.	आध्यात्मिक पत्र	60/-
25.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-	58.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1	125/-
26.	सुखी जीवन के Mile-Stone	100/-	59.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2	175/-
27.	समाधि मृत्यु	80/-	60.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-3	150/-
28.	The Way of Metaphysical Life	60/-	61.	इन्द्रिय पराजय शतक	50/-
29.	Pearls of Preaching	60/-	62.	अर्हद् दिव्य-संदेश (दीक्षा-विशेषांक)	60/-
30.	New Message for a New Day	600/-	63.	'बेंगलोर' प्रवचन-मोती	140/-
31.	Celibacy	70/-	64.	तीन भाष्य (हिन्दी विवेचन)	150/-
32.	Panch Pratikraman Sootra	60/-	65.	जीव-विचार-विवेचन	100/-
33.	श्रीपाल-रास और जीवन-चरित्र	160/-			

पुस्तक प्राप्ति स्थान : दिव्य सन्देश प्रकाशन C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

Kamal PRINTER'S M. 9820530299